अंक १५७ व १५८

जनवरी-जून २०२२

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

- सीमा असीम सक्सेना
- डॉ. सी. भास्कर राव
- प्रगति गुप्ता
- डॉ. रंजना जायसवाल
- सदाशिव कौतुक
- अखिलेश श्रीवास्तव चमन
- प्रेम गुप्ता "मानी"
- रश्मि धवन
- विजय सिंह चौहान
- डॉ. जयवंती डिमरी
- डॉ. निधि अग्रवाल
- संजय कुमार सिंह

आमने-सामने

अरविंद "राही"

सागर-सीपी

सदाशिव "कौतुक"

४० रुपये

आपके अपने पुस्तकालय के लिए ज़रूरी पुस्तकें

मूल्य : ५०० रु.

नीलकंठ प्रकाशन, ४७६०-६१, द्वितीय तल,
२३, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२
E-mail : pankajguptabook@gmail.com

मूल्य :
४०० रु.

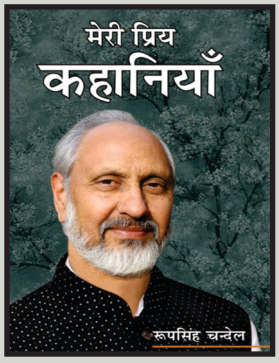

श्रीसाहित्य प्रकाशन, डी-५८०, गली नं. ४,
अशोक नगर, शाहदरा,दिल्ली-११००९३.
e-mail: shrisahityaprakashan@gmail.com

प्रकाशक से सीधे
मंगाने पर
२० प्रतिशत
छूट का लाभ
उठायें.

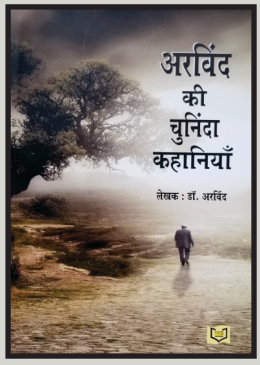

मूल्य :
२०० रु.

इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि.,
सी-१२२, सेक्टर १९, नोएडा-२०१३०१.
e-mail: indianetbooks@gmail.com

मूल्य :
४०० रु.

श्रीसाहित्य प्रकाशन, डी-५८०, गली नं. ४,
अशोक नगर, शाहदरा,दिल्ली-११००९३.
e-mail: shrisahityaprakashan@gmail.com

amazon
Flipkart
पर भी
उपलब्ध

मूल्य :
२०० रु.

शिवना प्रकाशन,
पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट,
बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. (म. प्र.)
e-mail: shivna.prakashan@gmail.com

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

जनवरी-जून २०२२
१५७ व १५८
संयुक्तांक

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : १००० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,

कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल "**कथाबिंब**" के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो. : ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

कहानियां

।। ७ ।। नहीं मुझे शहर नहीं जाना है – सीमा असीम सक्सेना
।। ११।। निर्णय – डॉ. सी. भास्कर राव
।। १७।। उसका आना – प्रगति गुप्ता
।। २३।। अंतिम इच्छा – डॉ. रंजना जायसवाल
।। २७।। चल मेरे चेतक – सदाशिव कौतुक
।। ३३।। तितलियां और तितलियां – अखिलेश श्रीवास्तव चमन
।। ३७।। हरा समंदर – प्रेम गुप्ता "मानी"
।। ४७।। मैं बांझ नहीं हूं– रश्मि धवन
।। ५१।। मन की ज़मीन – विजय सिंह चौहान
।। ५३।। मैं आगे बढ़ गयी हूं – डॉ. जयवंती डिमरी
।। ५७।। परदा रीलोडेड – डॉ. निधि अग्रवाल
।। ६१।। गांधी का स्वप्न भंग – संजय कुमार सिंह

लघुकथाएं

।। २६।। देवता / दीपाली ठाकुर
।। ६८।। अनकह व्यथा / ललन प्रसाद सिंह
।। ८५।। और चाभी / सुनीता मिश्रा
।। ८६।। सवा रुपए / वीरेंद्र बहादुर सिंह

ग़ज़लें / कविताएं

।। ३१।। ग़ज़ल / सतपाल स्नेही
।। ३२।। गीत : स्वीकारेगी लहर संगमन / मधु प्रसाद
।। ४६।। दो ग़ज़लें / केदारनाथ "सविता"
।। ६४।। कविता : परिणत होते पिता / महेश कुमार केशरी

स्तंभ

।। ३ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"

।। ५ ।। लेटर बॉक्स

।। ६५।। "आमने-सामने" / अरविंद "राही"

।। ६९।। "सागर-सीपी" / सदाशिव "कौतुक"

।। ७३।। "औरतनामा" : सिंधु ताई सपकाल / डॉ. राजम पिल्लै

।। ७५।। "वातायन" / डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

।। ७७।। पुस्तक-समीक्षा

● न्यूयॉर्क संपर्क ●

नरेश मित्तल
(M) 845-367-1044

● कैलीफ़ोर्निया संपर्क ●

तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

● **"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी** ●

facebook.com/kathabimb

आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु २० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)

आवरण चित्र : बिगुल वृक्षों (टैबेबुआ रोजिया) के गुलाबी-नीले फूलों का मनोहारी चित्र. ये चेरीब्लॉज्म फूलों जैसे दिखते हैं. प्रति वर्ष जनवरी-मार्च में मुंबई के पूर्वी मुक्त महामार्ग पर विक्रोली-घाटकोपर के बीच दिखाई देते हैं.

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था"के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

इच्छुक व्यक्ति आजीवन सदस्यता शुल्क (१००० रु.) सीधे बैंक के खाते में भी भेज सकते हैं.

खाते का नाम व संख्या : KATHABIMB, 018011300001164
बैंक का नाम व पता : JANKALYAN SAHAKARI BANK LTD.
: Sindhu Society, Chembur, Mumbai-400071.
आई इफ एस कोड : JSBL0000018

With the Best Compliments of :

Real West

PROPERTIES & LENDING

Chandru Bhambhra
Your Professional Presenter
C.E.O/Broker
REALTOR

200 Brown Road #204, Fremont, CA 94539
Cell (510)299-0906, Fax (510)440-0101
Web : www.RealWestProperties.com
E-Mail : chandrub@sbcglobal.net
BRE : 01824696 NMLS#322403

कुछ कही, कुछ अनकही

यह अतिशय प्रशंसनीय है कि दो साल तक कोरोना का प्रकोप झेलने के बाद भारत ने महामारी से लगभग निजात पा ली है. इसका सारा श्रेय युद्ध स्तर, बड़े पैमाने पर, सारी जनसंख्या का टीकाकरण होना है. इस दिशा में सरकार के सभी संबंधित विभागों ने अभूतपूर्व सहयोग किया. तभी यह स्थिति आ सकी है. इस मामले में विश्व के अनेक विकसित देशों से हम कहीं आगे हैं.

वर्ष का यह पहला संयुक्तांक है. संयुक्तांक को पाठक "कथाबिंब" की वेबसाइट पर जून के अंतिम सप्ताह तक पढ़ सकेंगे. आशा है कि जल्दी ही प्रिंट वर्ज़न भी पाठकों को उपलब्ध होगा. हम उन सभी रचनाकारों के आभारी हैं जो हमें लगातार सामग्री भेजते रहते हैं. यह सुखद स्थिति है, इसके चलते हम यह भी चाहेंगे कि पाठक प्रकाशित रचनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया लेखकों को और साथ में हमें भी भेजें.

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०२१" के पुरस्कारों की घोषणा इस बार पृष्ठ ८८ पर प्रकाशित की गयी है. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई. प्रशस्ति-पत्र के साथ पुरस्कार की राशि चैक द्वारा शीघ्र भेजी जायेगी. यदि विजेताओं में से कोई आजीवन सदस्य बनना चाहे, तो कृपया समय से हमें सूचित करें.

●

अब प्रस्तुत है इस संयुक्तांक की कहानियों का ट्रेलर : वर्तमान समय में महामारी के दौरान रचनाकार पीछे नहीं रहे हैं, वे लगातार सृजनरत हैं. कथाबिंब को निरंतर अच्छी कहानियां मिलती रही हैं. संयुक्तांक की पहली कहानी *"नहीं मुझे शहर नहीं जाना है"* (सीमा असीम सक्सेना) की गांव की सीधी-साधी लड़की शहर में रहने और नौकरी करने का प्रस्ताव ठुकरा देती क्योंकि नित्य टीवी पर सुनती रहती है कि शहरी लोग लड़कियों के साथ ग़लत करते हैं. डॉ. सी. भास्कर राव (*"निर्णय"*) वरिष्ठ कथाकार हैं. अनेक बार आपकी कहानी ने कथाबिंब के पृष्ठों को सुशोभित किया है. कहानी में एक ऐसा परिवार है जिसके पुरुष के पर-स्त्री से संबंध हैं. वह मां, पत्नी और न ही पुत्री की बिल्कुल चिंता करता. बेटी को धीरे-धीरे सब मालूम होने लगता है. मां की मृत्यु के बाद वह स्वयं को दादी के अधिक करीब पाती है. लेकिन पिता धोखे से दादी को एक वृद्धाश्रम में छोड़ आता है. दादी बीमार हैं. पोती को मालूम पड़ता है तो वह निर्णय लेती है कि वह दादी को अपने पास रख कर उनकी सेवा करेगी. अगली कहानी *"उसका आना"* (प्रगति गुप्ता) अलग तेवर की कहानी है. यहां भी एक भरा-पूरा परिवार है. कस्तूरी गर्भवती है. सास चाहती है कि पहला बच्चा लड़का हो. वह भ्रूण परीक्षण की सलाह देती है. लेकिन विवेक और कस्तूरी का कहना है कि बच्चा लड़का हो या लड़की उन्हें फ़र्क नहीं पड़ता, बस बच्चा सेहतमंद होना चाहिए. सोनोग्राफ़ी से मालूम पड़ता है कि पेट में लड़की है. जन्म के बाद ज्ञात होता है कि बच्ची वेदिका स्पास्टिक है और न ही बोल पाती है. कस्तूरी सुबह से शाम वेदिका की तीमारदारी में लगी रहती है. वह ऐसे बच्चों के लिए एक सेंटर खोलती है. बहुत से लोग उससे जुड़ते हैं.

सामान्यत: यदि किसी परिवार में दो बहनें हों और शादी के बाद बड़ी बहन की बीमारी या किसी अन्य कारण से मृत्यु हो जाती है तो परिवार वाले, यहां तक कि मां भी छोटी बहन पर दबाब डालती है कि वह बच्चों की खातिर जीजा जी से शादी कर ले. किंतु नेहा को यह स्वीकार नहीं है. कहानी *"अंतिम इच्छा"* में लेखिका डॉ. रंजना जायसवाल इससे भिन्न विकल्प प्रस्तुत कर रही हैं. अगली कहानी *"चल मेरे चेतक"* (सदाशिव कौतुक) के सतीश बाबू वैष्णो देवी की यात्रा पर निकले हैं. उन्होंने मन्नत मांगी थी कि लड़का होने पर पैदल ही माता के दर्शन को जायेंगे. लड़के के लिए उन्होंने एक पिट्ठू कर लिया था. पिट्ठू काफी दुबला-पतला था फिर भी काफ़ी मुस्तैद था. उसकी और मुन्ना की दोस्ती हो गयी. बात-बात में उसने बताया कि मुन्ना यदि उसे चेतक कहे तो उसमें और फुर्ती आ जायेगी. पिट्ठू की आवाज़ सुनकर पति-पत्नी को याद आया कि इस आवाज़ को वे पहले भी सुन चुके हैं. यह रहमान तांगे वाला था जो चार साल पहले उन्हें कश्मीर में मिला था. एक हादसे में उसके घोड़े चेतक को गोली लगी और सब कुछ उलट-पुलट गया.

अखिलेश श्रीवास्तव चमन कथाबिंब के पाठकों के लिए नया नाम है. उन्होंने अपनी कहानी *"तितलियां और तितलियां"* के माध्यम से एक ज्वलंत समस्या सामने रखी है. आज शिक्षा के क्षेत्र में इतनी गलाकाट प्रतिस्पर्धा है कि यदि बच्चों के ९० प्रतिशत से अधिक मार्क्स नहीं आते तो माता-पिता निराश हो जाते हैं, इसलिए शुरू से बच्चे को अच्छे से अच्छे स्कूल में भर्ती करते हैं, लेकिन ऐसे में तितलियों और खिलौनों के लिए बच्चा समय नहीं निकाल पाता. किंतु कहानी के काव्या के मम्मी-पापा की सोच इससे भिन्न है. इसके विपरीत सातवीं कहानी *"हरा समंदर"* (प्रेम गुप्ता "मानी") के काकू बच्चों के शोर-शराबे से परेशान हैं. छुट्टी वाले दिन वे घर में बैठकर महीने का हिसाब-किताब जमाने बैठे हैं कि इस महीने कैसे घर का ख़र्चा पूरेगा. लेकिन बाहर से आती बच्चों की आवाज़ें बार-बार सब गड़बड़ कर देती हैं. इसमें उनके बच्चे भी हैं. आमदनी कम ख़र्च ज़्यादा. पत्नी भी यह सब देखती रहती हैं. अंत में वे ही सलाह देती हैं कि काकू कुछ ट्यूशन करने लगें, अब काकू को भी समंदर हरा लगने लगता है. अगली कहानी *"मैं बांझ नहीं हूं"* (रश्मि धवन) की नीरा बड़े व्यापारी घर की सबसे छोटी बहू है. विवाह के पांच साल बाद भी उसकी गोद नहीं भरी. पति ने घर वालों की सलाह पर नीरा की डॉक्टरी जांच करवा ली. मालूम पड़ा कि वह पूरी तरह स्वस्थ है. नीरा ने पति से भी कहा कि वह अपनी जांच करवा ले लेकिन वह टालम-टोल करता रहा. घर वाले उसकी दूसरी शादी की बात करने लगे, पर वह नीरा से अत्यधिक प्रेम करता

था. फिर बात आयी कि क्यों न किसी बच्चे को गोद ले लिया जाये. तत्पश्चात यह तय पाता है कि परिवार के किसी बच्चे को गोद लें. भैया और रेखा भाभी खास तौर पर उन्हीं के लिए एक संतान को जन्म देते हैं. गुड़िया को पाकर नीरा निहाल हो जाती है. रवि ने नीरा का यह रूप पहली बार देखा, उसने अपनी डॉक्टरी जांच करायी. मालूम पड़ा कि थोड़े से इलाज़ से वे दोनों भी मां-बाप बन सकते हैं. लेकिन नीरा को यह मंज़ूर नहीं हुआ. अगली कहानी *"मन की ज़मीन"* (विजय सिंह चौहान) की सपना ऑटो रिक्शा चलाती है. वह लोगों की मदद करने में पीछे नहीं रहती. एक बार एक बड़े अस्पताल जाने के लिए एक वृद्ध उसके रिक्शे पर बैठे. बातों-बातों में मालूम पड़ा कि बाबू जी के चार बेटे हैं किंतु कोई साथ में नहीं रहता. अस्पताल पहुंचने पर सपना ने हाथ पकड़ कर उन्हें रिक्शे से उतारा. पर्ची बनवाने और दवाइयां सहेजने में मदद की. लौटते हुए रास्ते में चाय भी पिलायी. बाबू जी ने पूछा कि सपना के घर में कौन-कौन है. प्रश्न ने सपना की पलकों के पीछे छिपे बांध को खोल दिया. भरा-पूरा परिवार था. माता-पिता की याद आती है तो बाबू जी जैसे बुज़ुर्गों की सेवा कर ख़ुशियां बांट लेती है.

दसवीं कहानी *"मैं आगे बढ़ गयी हूं"* की लेखिका डॉ. जयवंती डिमरी हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय (शिमला) में अंग्रेज़ी की व्याख्याता रही हैं. सेवानिवृत्ति के पश्चात अब देहरादून में निवास. अमेरिका का आकर्षण इतना जबरदस्त है कि मां-बाप को लगता है कि शादी के बाद विनीता सुख से रहेगी. लेकिन स्थितियां एकदम विपरीत हो जाती हैं. पति की मृत्यु हो जाती है, एक बच्चा भी है. ज़िम्मेदारियां उठाने के लिए विगत को भुलाकर नया संबंध बनाकर आगे बढ़ना पड़ता है. अगली कहानी *"परदा रीलोडेड"* (डॉ. निधि अग्रवाल) आज के ज़माने की सच्चाई है. हर किसी के पास स्मार्ट फ़ोन है, यह व्यक्ति को असीमित क्षमता प्रदान करता है. आपके आसपास किसी भी प्रकार की अपराधिक घटना घट रही हो तो झट फ़ोटो लेकर आप पुलिस को इसकी सूचना दे सकते हैं या मीडिया के लोगों को ख़बर कर सकते हैं. किंतु इससे विपरीत स्मार्ट फ़ोन को रोज़ कितने अपराधों में इस्तेमाल करते है. बिना बताये किसी भी लड़की की फ़ोटो खींची जा सकती है, उसे बदनाम किया जाता है. हर कोई शिकायत भी नहीं करता. मिनी भी ऐसी दुविधा में फंस जाती है. किसी ने मॉर्फ करके उसकी फ़ोटोज़ सर्कुलेट कर दीं. हिम्मत करके वह पिता जी को बताती है और पुलिस में शिकायत करती है. इस तरह आसन्न संकट से वह बच जाती है. संयुक्तांक की अंतिम कहानी *"गांधी का स्वप्न भंग"* (संजय कुमार सिंह) एक फ़ैंटेसी है. अगर कभी गांधी अपनी समाधि से बाहर आयें तो वे पायेंगे कि वे कहीं नहीं है. न गुजरात में, न महाराष्ट्र में और न ही बिहार या बंगाल में. वे पूरी तरह ऑउटडेटेड हो गये हैं.

●

कोरोना महामारी ने पूरे विश्व की आर्थिक व्यवस्था को चौपट कर दिया है. अमेरिका जैसा संपन्न देश जहां सालोंसाल दाम स्थिर रहते थे आज महंगाई से जूझ रहा है. रूस और यूक्रेन की लड़ाई ने हालात और बिगाड़ दिये हैं. तीन महीनों से अधिक हो गया है लेकिन यूक्रेन युद्ध-विराम के लिए तैयार नहीं है. रोज़ आंकड़े रिलीज़ होते हैं कि दोनों देशों के इतने लोग मरे, इतने टैंक नष्ट हुए, इन-इन शहरों पर हमला हुआ. बचे हुए विस्थापित लोग कैसे भाग-भाग कर दूसरे देशों में जा रहे हैं. पूरे विश्व के हित में होगा जितनी जल्दी युद्ध ख़त्म हो अन्यथा कहीं यह न्यूक्लीय युद्ध में परिवर्तित हो गया तो क्या होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती. इसके साथ ही विश्व के अनेक देशों में नित सत्ता-पलट की घटनाएं सुनने में आती हैं. श्रीलंका, पाकिस्तान, अफ़गानिस्तान में दैनिक उपयोग की वस्तुएं या तो उपलब्ध नहीं हैं या बहुत महंगी हैं. हम भी अछूते नहीं हैं, महंगाई भारत में भी बढ़ी है. लेकिन पिछले कुछ सालों में सरकार ने जो नीतियां अपनायी हैं उनके कारण हम कहीं बेहतर स्थिति में हैं. अभी कुछ दिन पूर्व पेट्रोलियम पदार्थों के दाम कम किये गये हैं. खाद्यानों की कमी बिल्कुल नहीं है. पिछले दो सालों में कितने लोगों को मुफ़्त अनाज वितरित किया गया. आज भी सरकार ने कहा है कि यदि अमेरिका चाहे तो हम उसे भी गेहूं दे सकते हैं. महामारी के दौरान अपनी आवश्यकता के अतिरिक्त कितने अन्य देशों को वैक्सीन दी गयी. श्रीलंका में राजनीतिक अस्थिरता अभी भी बरकरार है. पेट्रोल-डीज़ल की इतनी किल्लत है कि कई-कई दिनों तक लाइन लगानी पड़ती है. ऐसा सुनने में आया है कि कुछ लोग लाइन में नंबर का इंतज़ार करते-करते मर गये. भारत ने बड़ी मात्रा में राहत सामग्री भेजी है. कुछ दिन पहले अफ़गान में भूकंप आया, हज़ार से अधिक मौतें हुईं. वहां के लोगों के लिए भी राहत सामग्री भेजी गयी. जहां तक संभव होता है भारत पड़ोसी देशों की सहायता करता है.

●

विपक्ष का काम क्या मात्र विरोध करना ही है. देश में अनगिनत राजनीतिक पार्टियां हैं, किसी न किसी मुद्दे को उछाल कर अपनी उपस्थिति दर्ज करना है. इसमें टीवी के चैनल्स भी सहयोग करती हैं. टीआरपी के चक्कर में, सुबह से शाम तक छोटे-छोटे अर्थहीन मुद्दों को ये उछालती रहती हैं. —विवादित बयान और ब्रेकिंग न्यूज़. लगता है सभी रिपोर्टरों को प्रशिक्षण दिया जाता है कि एक ही ख़बर को अलग-अलग ढंग से, ड्रामा करते हुए कम से कम दस बार पेश कैसे करना है. कॉन्ग्रेस देश की सबसे पुरानी पार्टी है. लेकिन आज महज दो-तीन प्रांतों में सिमटकर रह गयी है. अनेक दिग्गज पार्टी छोड़कर जा रहे हैं. नेशनल हेराल्ड को लेकर सोनिया और राहुल गांधी दोनों बेल पर हैं. प्रवर्तन निदेशालय में दोनों की पेशी होनी है. राहुल गांधी की पेशी को पांच दिन हो गये हैं, १०-१० घंटे सवाल किये जा रहे हैं, पर युवराज संतोषजनक उत्तर नहीं दे पा रहे हैं. इसके बाद सोनिया जी का नंबर है, अस्वस्थता के कारण उन्होंने आगे की तारीख़ मांगी है. यदि दोनों पाक-साफ़ हैं तो इतना हंगामा क्यों है? क्यों सारे देश से दिल्ली में कॉन्ग्रेसियों की भीड़ जमा करके, जिसमें दो-तीन प्रांतों के मुख्य मंत्री भी हैं, प्रदर्शन की आवश्यकता है?

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ *आदरणीय संपादकजी, नमस्कार!*

कथाबिंब का 'जुलाई-दिसंबर२०२१' अंक मिला, धन्यवाद.

अपने संपादकीय में तो आपने सभी कहानियों का सार तत्व बता ही दिया है, साथ ही राष्ट्रीय परिदृश्य का दिग्दर्शन भी करा दिया है यानी सोने में सुहागा. पूरी पत्रिका पढ़ते-पढ़ते मन प्रसन्न हो जाता है कि यह है रचनाकारों की दुनिया. मैं यहां अपनी प्रतिक्रिया लिख रही हूं.

'बीजी यहीं हैं,' अशोक गौतम जी की यह कहानी उन अनेक व्यक्तियों की कहानी है जिन्हें ऐसे प्रिय जन छोड़ कर चले गए जिनसे उनका गहरा आत्मिक लगाव रहा है. वे छोड़कर चले गए पर उनके होने का अहसास बना रहता है. मेरी अपनी बात है. मेरे पिता बरसों पहले चले गए पर उनके बगैर सूने घर में चलते-फिरते मुझे हर पल लगता है जैसे वे अशरीरी रूप में घर में ही हैं, बल्कि छाये हुए हैं. मैं यह इस शिद्दत से महसूस करती हूं कि मैंने उनकी तस्वीर को माला भी नहीं पहनाई कि वे तो हैं ही.

जीवन की गहराती सांझ में जब कोई जीव दुनिया के हानि लाभ के प्रपंचों से ऊपर उठकर अपने ही जीवन की समीक्षा करता है, तो वह ऐसे अभूतपूर्व फ़ैसले ले लेता है जो कि उसके संपूर्ण जीवन की वास्तविक मीमांसा होती है, बताती है अमृता पांडे जी की 'बरगद की छांव'.

हरी प्रकाश राठीजी की 'पिंजरे' ने एक बार फिर स्थापित कर दिया कि रचनाकार अपनी मृत्यु के बाद भी अपनी रचनाओं में जीवित रहता है. पाठक जब किसी समर्पित रचनाकार की रचना पढ़ रहा होता है तो वह वास्तव में उस रचनाकार से साक्षात्कार कर रहा होता है, क्योंकि रचनाकार का हाड़ मांस का शरीर भले ही जा चुका हो पर वह अपना स्वत्व, अपने जीवन का निचोड़ उस रचना में डाल चुका होता है. उस रात लेखक रचनाकारों से ही नहीं मिलता, कलाकारों, ऐतिहासिक धरोहरों से भी मिलता है और अंत में फ्रॉयड के स्वप्न संबंधी सिद्धांत की पुष्टि कर देता है. क्या लेखक का मंतव्य यही है!

सीमा जैन जी प्रथम दर्शन में ही प्रेम में बिंधे रह जाने की मार्मिक कथा कहती हैं. यह मीठी-मीठी मार्मिक पीड़ा भी बहुतों ने प्यार से भुगती है. कहानी पढ़ते हुए मुझे स्व. गोपाल सिंह ने पाली जी की पंक्तियां याद आ गयी... 'एक दिन क्या मिले, दिल उड़ा ले गये. मुफ़्त में उम्र भर की जलन दे गये...'

ऐसे ही प्रेम की प्यास में व्याकुल उपमा शर्मा की नायिका अपनों से, दुनियां से निस्संग, प्रियतम की तलाश में कलकल नदी-सी बही जा रही है, घाटी, नदी पहाड़ लांघते, चोट पर चोट खाते, लहूलुहान होते. हृदयग्राही रचना.

इन प्रेम रस में सराबोर फैंटेसी-सी प्यारी कहानियों के ठीक विपरीत 'लेखा जोखा' प्रस्तुत करती हैं अमिता प्रकाश जी. जीवन संघर्ष की कठोर गाथा. साक्षात नारी सशक्तिकरण.

अमिता प्रकाश जी ने जीवन संघर्ष की कठोर गाथा बतायी तो दिवा भट्ट जी ने समय के सत्य की कठोर गाथा. मैच 'फिक्सिंग'. बेहद सरल, सहज, रोचक रूप में. समय के सत्य ही नहीं, आनेवाले समय की आहट भी देती है यह कहानी.

यह तो जीवन की, समय के सत्य की पीड़ा है मगर महेश शर्मा जी एक अन्य ही दबी हुई पीड़ा को उभारकर सामने लाते हैं, 'नीड़ से बिछुड़े'. हम ख़ुश होते हैं कि निरंतर विकास हो रहा है पर इस विकास के लिए कितनों को कितनी वेदना झेलनी पड़ रही है. कहानी का अंतिम दृश्य तो अत्यंत हृदयग्राही है जब गाय पानी में डूबनेवाले घर को छोड़कर जाने से इनकार कर देती है और भानू जार-जार रोते हुए उसे खींच–खींच कर ले जा रहा है कि चल माता, यहां सड़क बनेगी. विकास होगा. विकास के लिए यह दर्द तो पीना ही है.

सरोजनी नौटियाल जी और लता अग्रवाल जी, दोनों ही की कहानियां अत्यंत हृदयग्राही हैं. जहां लता जी देश के लिए प्राणों का उत्सर्ग करनेवाले शहीदों के परिवारों के बलिदानों को भी सामने लाती हैं, वहीं सरोजनी जी उस काले दौर

को आज फिर सामने लाकर रख रही हैं जब ससुराली प्रताड़ना से पीड़ित निस्सहाय महिलाएं धू-धू कर जल मर रही थीं. उन आहुतियों के बाद ही आज यह 'महिलाओं का स्वर्ण युग' आया है. तुम भूल न जाना उनको, इसलिए कही ये कहानी...

सरोजनी जी के 'आख़िर क्यों' का किंचित उत्तर देती–सी प्रतीत होती है प्रकाश मनु की कहानी कि अगर समाज में बुआजी और रति जैसे लोगों की संख्या बढ़े तो अनाचार कम हो सकते हैं.

कई बरस पहले स्वच्छता कर्मियों पर एक वृहत उपन्यास पढ़ा था, स्व. अमृतलाल नागर जी का 'नाच्यो बहुत गोपाल'. आज सिद्धेश जी की छोटी–सी कहानी पढ़ने मिली. 'बाबूलाल भंगी'. अच्छा लगा.

सभी लेखकों को बधाई. आपको साधुवाद.

- शुभदा मिश्र

१४,पटेल वार्ड, डोंगरगढ़ (छ.ग.)

मो. : ८२६९५९४५९८

▶▶ कथाबिंब का जुलाई-दिसंबर २०२१ अंक हमेशा की तरह सामग्री का उत्तम चयन. १२ कहानियां, तीन लघुकथाएं ग़ज़लों, कविताओं एवं स्थाई स्तंभ से सज्जित यह अंक संयुक्तांक है. कहानियां समय और समाज के ज़रूरी प्रश्नों से मुठभेड़ करती हैं.

ऐसे कठिन समय में पत्रिका निकालना कितना मुश्किल है, समझा जा सकता है. फिर भी 'कथाबिंब' ने स्तरीयता बरकरार रखी है, यह आश्वस्तकारी है.

संपादकीय में राजनैतिक चेतना और चिंता भी है. कथाओं का संक्षिप्त परिचय तो है ही. इससे पसंदीदा कथानक वाली रचनाओं को पढ़ने की उत्सुकता जगती है. अनंत शुभकामनाएं.

- एक हितैषी

▶▶ 'कथाबिंब' का जुलाई-दिसंबर अंक. पूरा पढ़ने की कोशिश. लगभग सभी कहानियां पढ़ीं और कह सकता हूं कि 'कथाबिंब' हिंदी की कथा पत्रिकाओं में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी. एक से बढ़कर एक कहानियां हर अंक में पढ़ने को मिलती हैं. इस अंक में भी कहानियों का स्तर बहुत बढ़िया रहा. फिर चाहे अशोक गौतम की 'बीजी यहीं हैं' हो या फिर अमृता पांडे की 'बरगद की छांव' हो. सीमा जैन की 'मीरा की बिखरी यादें' काफ़ी मार्मिक रही. 'पिंजरे' लेखकीय सोच व दर्शन का परिचय देती है. सभी कथाकारों को बधाई. लघुकथाएं भी स्तरीय हैं. डॉ. अरविंद के इस श्रम व निरंतरता को सलाम. इस बार आमने-सामने की कमी खली जबकि सागर-सीपी काफ़ी लंबा हो गया. हां, साहित्यिक गतिविधियां स्तंभ ज़रूर होना चाहिए. पत्रिका के नये अंक का इंतज़ार बना रहेगा.

- कमलेश भारतीय,

हिसार (हरियाणा)

९४१६०४७०७५

▶▶ **प्रिय डॉ. अरविंद और मंजुश्री,**

कथाबिंब जुलाई-दिसंबर २०२१ भिजवाने का आभार. हर अंक नियमित, समय पर मिलता रहा है. पढ़ता, नोटिस भी लेता हूं. अपनी समीक्षा या टिप्पणी में कभी. कहां उल्लेख भी करता रहा हूं. दशकों पूर्व अपने स्तंभों में मुझे, प्यार के साथ आपने प्रकाशित किया है. कथा, कविताएं भी. 'इधर वाला, उधर वाला' शीर्षक था शायद. ३५-४० साल पुरानी बात है.

'कही-अनकही' गंभीर पाठक का ध्यान आकर्षित करने वाला संपादकीय 'कथाबिंब' में रहता है देश-दुनिया के साथ कहानियों पर चर्चा, संपादक धर्म निभाते हुए आप कर जाते हैं. सराहनीय. 'कमलेश्वर कथा प्रतियोगिता' ने भी रचनाकारों को प्रेरित प्रोत्साहित किया होगा. नये लोगों को स्थान देना आज रचनात्मकता को प्रमोट करना है. ग़ज़ल, गीत, कविता के साथ लघुकथाएं भी अब पाठक पढ़ जाते हैं, समय की तंगी में. मैं इस यार, 'बीजी यहीं है', 'पिंजरे' जैसी कहानियां पढ़कर अशोक गौतम, हरिप्रकाश राठी से संपर्क कर चुका हूं. पंजाबी में इनकी कोई कथा अनुवाद होगी, छपेगी भी.

मंजुश्री का पत्र 'क़िस्सा' में पढ़ा. 'पाखी' में या अन्यत्र कहीं भी, आप दोनों की रचना या ख़त पढ़कर अच्छा लगता है. शब्द और संप्रेषण-संवाद में ख़त आज भी मेरा माध्यम है. 'कथाबिंब' के स्तंभ मुझे सशक्त लगे हैं. याद है, जनवरी-जून २००४ का कहानी विशेषांक, दो सौ पृष्ठों से ऊपर,

शेष पृष्ठ १२ पर देखें.

नहीं शहर नहीं जाना है मुझे

■ सीमा असीम सक्सेना

मूल रूप से कथाकार और उपन्यासकार व कविता लेखन. ४ कहानी संग्रह, २ कविता संग्रह और तीन उपन्यास प्रकाशित. विभिन्न साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं : परिकथा, कथाक्रम, कथादेश, साक्षात्कार, गगनांचल, अमर उजाला, दैनिक जागरण आदि में नियमित रूप से कहानियां, कविताएं और आलेख आदि प्रकाशित. इसके साथ ही समय-समय पर आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से कहानियों व वार्ताओं आदि का प्रसारण. इसके अलावा घूमने व थिएटर में काम करने का शौक़.

युवा कथाकार का सम्मान और वेस्ट वियुवर्स अवार्ड प्राप्त. हाल ही में इंडिया नेटबुक्स से एक उपन्यास 'जाग मुसाफिर' प्रकाशित.

500/–

'सुनो तुमने उधर हमारे घोड़े देखे?' उस सुनसान ज़गह पर किसी लड़की की सुरीली आवाज़ कानों में पड़ी तो मैंने पलटकर देखा. क़रीब सोलह सत्रह साल की दुबली पतली-सी एक लड़की मेरी तरफ़ ही देख रही थी.

'कहां पर?' मैंने उससे पूछा.

'उधर नदी के किनारे?' उसने अपना हाथ उठाकर नदी की तरफ़ इशारा करते हुए कहा, तुम लोग अभी नदी के किनारे से ही तो आ रहे हो? वहां पर तुमने कोई घोड़ा देखा है इधर-उधर जाता हुआ?' वो अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से प्रश्नवाचक नज़रों से मेरी तरफ़ देखती हुई बोली.

'नहीं हमने तो उधर कुछ नहीं देखा.' मेरे कुछ कहने से पहले ही राहुल बोल पड़े.

'अरे वे उधर ही तो चले गये थे. मैं अभी उनको घास चरा रही थी और जैसे ही मैं जरा देर सुस्ताने को बैठी वे वैसे ही उधर नदी की तरफ़ चले गये, तो मैंने सोचा कि मैं तुम लोगों से ही पूछ लूं, तुम लोग उधर से ही तो घूम कर आ रहे हो न?' वो फिर से हमारी तरफ़ प्रश्नवाचक नज़रों से देखती हुई बोली.

'हां मैं आ तो उधर से ही रहा हूं लेकिन वहां पर कोई भी नहीं है. ना घोड़ा, ना कुत्ता, न गधा, न खच्चर, न बकरी, भेड़ और ना ही कोई इंसान. वहां पर जीव-जंतु के नाम पर कोई भी चीज़ नहीं है सिर्फ़ नदी है, पत्थर हैं, लहरें हैं, और उस नदी की कलकल है. बस और वहां पर कुछ भी नहीं है.' मेरी जगह राहुल ने ही उसे जवाब देते हुए कहा.

वो मुस्कुरायी, 'वहां पर कोई नहीं है?' फिरसे वैसा ही प्रश्न.

'नहीं ना, कोई भी नहीं है. मैं क्या झूठ बोल रहा हूं?' राहुल थोड़ा झुंझलाए.

'हम लोग तो नाव पर बैठ कर नदी पार गये थे. नौका विहार किया और दोपहर की इस गुनगुनी धूप में नदी की शीतल लहरों से अठखेलियां करके वापस आ गये, शायद इसीलिए हमारा ध्यान किसी और तरफ़ न गया हो.' मैंने बात को थोड़ा नम्र रुख़ देते हुए कहा.

'हां नदी का पानी बहुत शीतल और साफ़ है, आप नौका विहार को गये थे फिर तो वहां पर नाव और नाविक तो होंगे ही?' मेरी बात का उसने व्यंग्य से मुस्कुराते हुए जवाब दिया और अपना प्रश्न भी दाग दिया.

'अच्छा सुनो, तुम क्या करती हो?' मैंने बात का रुख़ पलटते हुए उससे पूछा.

'कुछ नहीं बस घर के काम करते हैं और यही भेड़-बकरियां, घोड़े चराते हैं.'

'कौन हो तुम लोग?'

'हम लोग बककरवाल हैं.'

'बककरवाल मतलब बकरियां चराने वाले.'

'हां.' उसके साथ बातें करके बड़ा अच्छा लग रहा था, तभी मेरे मन में ख्याल आया कि इसको अपने शहर ले जाएं तो इसका भी फ़ायदा हो जाएगा और मेरा भी.

'सुनो हमारे साथ शहर चलोगी?' जब मैंने उससे यह पूछा, तो वो एकदम से पलट कर बोली, 'नहीं हम क्या करेंगे शहर जाकर, हम कोई पढ़े-लिखे तो हैं नहीं.'

'अच्छा, तुमने बिलकुल भी पढ़ाई नहीं की?' मुझे लगा था कि अब इतनी सुविधाएं हैं हर कोई पढ़ सकता है फिर भी अभी देश में अशिक्षा है और लोग अनपढ़ हैं.

'नहीं हमें कुछ भी पढ़ना-लिखना नहीं आता, हम कभी स्कूल ही नहीं गये.'

'ओह ऽऽ,' मुझे थोड़ा अफ़सोस हुआ. 'तुम्हारी कितनी बहनें और भाई हैं?' उसकी बातें सुनकर मेरे मन में उससे बात करने की उसके बारे में जानने की उत्सुकता जग गयी.

'हमारी दो बड़ी बहनें और एक भाई है. सबकी शादी हो गयी, एक मैं रह गयी हूं. मैं सबसे छोटी हूं, अभी मेरी उम्र नहीं हुई है ना शादी की.' वो बड़े मज़े से मेरी बातों के जवाब दे रही थी शायद उसे भी हमसे बात करके अच्छा लग रहा था.

'यहां लड़कियों की कितनी उम्र में शादी होती है?'

'३०-३५ साल तक में या जब कोई अच्छा लड़का मिल जाये.'

'चलो फिर तो ठीक है, अब तुम शहर चलो, वहां पर काम करो, पैसे भी मिलेंगे.'

'हम तो कुछ पढ़े-लिखे नहीं हैं तो हमें कैसे और किस काम के पैसे मिल जाएंगे?' वो थोड़ा असमंजस में बोली.

'तुम घर का काम करना.' मुझे लगा अगर यह मेरे साथ चलने को राज़ी हो गयी तो मुझे थोड़ा आराम मिल जायेगा और मेरा जॉब भी आसानी से चलता रहेगा अन्यथा अब शादी के बाद जॉब छोड़ना पड़ सकता है.

'घर का काम, शहर में क्या घर के काम करने के भी पैसे मिलते हैं?' वह चौंककर अचंभित-सी मेरी तरफ़ देखती हुई बोली.

'हां मिलते हैं ना. तुम घर का काम करना, जैसे खाना बनाना, बर्तन धोना, सफ़ाई करना, कपड़े धोना और हमारे साथ हमारे घर में अच्छी तरह से रहना.' मैंने उसे प्यार से समझाया.

'लेकिन हमें कौन जाने देगा यहां से?' यह कहते हुए वह उदास हो गयी.

'क्यों नहीं जाने देगा? तुम अपने घर वालों से बात कर लो, सब पूछ लो और अगर वे लोग कहें तो तुम चलना.'

'हम अपने घर वालों से पूछेंगे तो वे हमें कहां जाने देंगे? वे लोग तो हमें जाने ही नहीं देंगे और अगर हम चले गये तो हमारे घर वालों की बहुत बदनामी होगी और फिर हमारी जात में शादी भी नहीं होगी.' बड़ी मासूमियत से वह बोली.

'अरे तो क्या हुआ हम उधर ही शादी करा देंगे. तुम्हें अपने घर में रखेंगे, तुम हमारे घर में हमारे साथ रहना. शहर में हमारा घर बहुत बड़ा है. तुम्हें रहने को एक कमरा दे देंगे. खाना जो हम खाएंगे वह तुम खाना और फिर तुम्हारे जो पैसे महीने के होते हैं, हज़ार-बारह सौ वे हम तुम्हारे अकाउंट में जमा करवा दिया करेंगे वे पैसे तुम्हारे घरवालों को मिल जाया करेंगे, फिर तो मुझे लगता है कि तुम्हारे घरवालों को कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए?' अभी तक चुप खड़े राहुल शायद मेरी मंशा समझ गये थे इसलिए उसे समझाया.

'अच्छा घर के काम के इतने सारे पैसे मिलते हैं?' वो भौचक्की होकर मुस्कुरायी.

'हां भई. शहर में इतने पैसे कोई भी दे देगा. महीने का लाख-लाख रुपये कमाते हैं उन्हें कोई फ़र्क नहीं पड़ता.' फिरसे राहुल ने ही जवाब दिया.

'ओ हो घर के काम के लिए शहरों में इतनी क़दर होती है?' उसे अभी भी विश्वास नहीं हो रहा था.

'हां और क्या? घर का काम भी तो काम ही है न. शहरों में लोग अपने काम से देर रात थके हारे आते हैं तो सोचते हैं कि कोई हो जो उनके घर का काम कर दे.' मैंने कहा.

'आप भी काम करने बाहर जाती हो?' उसने मेरी तरफ़ देखते हुए कहा.

'हां.' मैंने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया. 'तो क्या सोचा तुमने, चलोगी ?'

'नहीं ऐसा नहीं होता है, कहां होगा ऐसा? हमारे घरवाले हमें अकेले शहर भेजने को कभी नहीं मानेंगे ना.'

'अरे यह तो बहुत ग़लत बात है.'

'हां, यही है, हम गांव की लड़कियों को कहीं बाहर शहर में अकेले जाने ही नहीं दिया जाता है.'

मैं उसकी परिस्थिति समझकर बोली. 'यह तो सच में बहुत ही ग़लत है. न जाने क्यों लोग लड़कियों को लड़कों से कम समझते हैं? शहर में ऐसा नहीं है.'

'हम गांव के लोग हैं, ना पढ़े, न लिखे, तो हम गांव के लोग अपनी लड़कियों को घर से बाहर कहीं नहीं जाने देते हैं.' यह बात कहते हुए उसके चेहरे पर कोई उदासी या मायूसी नहीं थी.

'अच्छा तो तुम घोड़ा चराती हो, तुम बकरियां चराती हो. इनके लिए तो तुम घर से बाहर जाती हो ना?' मैं अपने समझाने के अंदाज़ में उससे बोली.

'हां वह तो हम जाते ही हैं. हम इन घोड़ों के साथ श्रीनगर भी जाते हैं.'

'अच्छा, तो तुम श्रीनगर जाकर क्या करती हो? यहां से श्रीनगर तो बहुत दूर है. क्या वहां अकेले चली जाती हो? क्या तुम घोड़े के ऊपर बैठ कर चली जाती हो?' मैं राहुल की तरफ़ देखती हुई उससे अनेकों सवाल कर बैठी. अब राहुल चुपचाप हम दोनों की बातों को सुन रहे थे.

'नहीं अकेले नहीं परिवार के साथ, हां, घोड़ों पर थोड़ी देर बैठते हैं फिर उसके बाद कोई सवारी पर रख लेते हैं अपने घोड़ों को, भेड़ बकरियों को, कुत्ते को भी और हम लोग भी उसी पर बैठ जाते हैं फिर हम श्रीनगर जाते हैं.'

'तुम श्रीनगर जाकर क्या करती हो, वहां पर तुम्हारा क्या कोई काम होता है ?'

'ऐसे ही सामान-उमान लेने के लिए चले जाते हैं.'

'किसके लिए सामान लेने जाती हो, क्या घोड़ों के लिए, भेड़–बकरियों के लिए?' मेरे मन में सब कुछ जान लेने की इच्छा पैदा हो गयी थी.

'नहीं अपने घर का राशन पानी लेने जाते हैं.'

'अच्छा तो तुम कहां रहती हो श्रीनगर में? या इधर जम्मू में ही रहती हो?'

'नहीं हम जम्मू में भी रहते हैं, श्रीनगर में भी रहते हैं हमारी भेड़-बकरियां जिधर चली जाती हैं उन्हीं के संग-संग हम भी चले जाते हैं फिर वहीं कहीं रुक जाते हैं. उधर जब ज़्यादा बर्फ़ गिरती है तो इधर चले आते हैं क्योंकि फिर वहां बर्फ़ के गिरने से घास की कमी हो जाती है, भेड़-बकरियों को चराने के लिए.'

'अच्छा तो क्या तुम्हारा कोई घर-बार नहीं है?'

'है हमारा घर-बार भी है. वैसे जहां हमारी भेड़ बकरियां वहां हम, रास्ते में ही तंबू तान के अपना घर बना लेते हैं, वहीं पर हम रोटी बनाते खाते हैं और कभी-कभी जब बारिश-आरिश होती है तो हम इकट्ठा खाना बनाकर रख लेते हैं. कभी मीठी रोटी बना लेते हैं, कभी हम चने–सत्तू से काम चला लेते हैं और अंदर ही बैठ कर खा लेते हैं. हमारे पास इतनी भेड़ बकरियां हैं उनका दूध होता है उससे घी और पनीर बना लेते हैं और भेड़ों से ऊन भी मिलती है जिसे बेच कर अच्छे पैसे मिल जाते हैं. ऐसे किसी बात की कोई कमी नहीं, लेकिन एक जगह न ठहर पाने के कारण पढ़ाई नहीं कर पाते हैं. पर अब तो हमारे रिश्ते के भाई पढ़ने लगे हैं.' उसने बड़े आत्मविश्वास के साथ कहा.

'यह तो अच्छी बात है. तुम्हें सब जगह घूमने को भी मिल जाता है लेकिन एक बात समझ में नहीं आयी कि अब तुम्हारे घर वाले अपनी लड़कियों को पढ़ने के लिए और बाहर शहर में काम करने के लिए क्यों नहीं जाने देना चाहते,

उन्हें अपने पैरों पर क्यों नहीं खड़े रहने देना चाहते?' राहुल से चुप नहीं रहा गया और वे बोल पड़े.

'सच कहूं बाबूजी?' वो बड़े आत्मविश्वास के साथ बोली.

'हां कहो ना?'

'हम लड़कियां ख़ुद भी शहर नहीं जाना चाहतीं. हम अपने गांव में ही भले हैं गांव में चार लोग हैं, उन सब चार लोगों को जानते हैं. यहां कोई किसी को ग़लत नज़र से नहीं देखते हैं और न वे लोग हमारे साथ कुछ ग़लत करते हैं. शहरों में तो लड़कियों का बहुत बुरा हाल कर देते हैं, जब भी कभी टीवी पर नज़र जाती है तो हम तो देखकर दंग रह जाते हैं इसीलिए हम भी जाना नहीं चाहते, शहरी बड़े स्वार्थी होते हैं, प्रेम के नाम पर ठग लेते हैं. सच में तो हमें शहर से ही डर लगता है.' उसके चेहरे पर अभी भी आत्मविश्वास झलक रहा था.

'हां यह बात तो तुम बिल्कुल ठीक कह रही हो लेकिन सब शहर वाले एक से नहीं होते हैं और न ही सब गांव वाले एक से होते हैं, हर जगह अच्छाइयां हैं और हर जगह बुराइयां भी हैं.' राहुल ने फिर कहा.

'बाबू जी आपकी इस बात पर एक बात कहें? तुम शहरी हो लेकिन तुम बहुत अच्छे हो, तुम अन्य शहरी जैसे नहीं हो.'

'अच्छा तुम्हें कैसे पता मैं अच्छा हूं?'

'क्योंकि तुम बहुत अपनेपन से बातें करते हो और सुनो बाबू जी आपकी पत्नी भी बड़ी प्यारी हैं.' उसने बड़े प्यार से मेरी तरफ़ देखा. एक अनपढ़ और गांव की लड़की होकर भी कितनी समझदारी और आत्मविश्वास के साथ बातें कर रही है, कहीं से भी महसूस नहीं हो रहा है कि यह पढ़ी-लिखी नहीं है. सलवार सूट पर चुन्नी, पांवों में जूतियां और बालों में सलीके से एक रबर बैंड लगाकर उन्हें बांधा हुआ था. न कोई मेकअप न कोई गहना. उसके चेहरे की मुस्कान और उसका आत्मविश्वास उसकी सुंदरता को बढ़ा रहे थे. 'क्या नाम है तुम्हारा?' मन को अपनी तरफ़ ख़ींचती हुई उस लड़की का आख़िर मुझसे उसका नाम पूछे बिना नहीं रहा गया. इतनी देर से बातें कर रहे थे लेकिन उसका नाम नहीं पूछा और सब बातें करती रही. मैंने मन ही मन सोचा और ख़ुद को बुद्धू समझ मुस्कुरायी.

'हमारा नाम राशिदा है, राशिदा.' वह अपने नाम राशिदा पर ज़ोर देती हुई बोली.

'तुम मुस्लिम हो?'

'हां, जी.'

'कोई नहीं हम हिंदू-मुस्लिम यह सब नहीं मानते. सिर्फ़ इंसानियत को ही समझते हैं. तुम भी तो हमारे जैसी इंसान हो, बहुत समझदार और प्यारी भी.'

'कुछ लोग तो बड़ा विचार मानते हैं.' यह कहते हुए वो फिर मुस्कुरायी, मानों तंज़ कस रही हो.

'उनसे हमें कुछ लेना-देना नहीं है, हम तो सबको एक जैसा इंसान समझते हैं.' राहुल बोल पड़े.

'हां, बाबू जी इसीलिए तो कहा कि तुम दोनों लोग बहुत अच्छे हो और बहुत प्यारे भी.' और वो मुस्कुराती हुई और लंबे-लंबे डग भरती हुई वहां से चली गयी, जैसे अब वो बात करने के मूड में नहीं थी, या उसे अपने घोड़े की फिक्र होने लगी थी.

शहर वालों के लिए इन गांव वालों के मन में यह कैसी वितृष्णा है? क्यों वे शहर वालों को स्वार्थी मानते हैं? मैं राहुल से पूछना चाहती थी उससे पहले ही वे बोल पड़े, यह गांव के लोग हैं सच्चे और अपने काम के प्रति लगनशील इनको पैसों का मोह बांध नहीं सकता.' सही ही कहा राहुल ने, 'चलो अब चलें.' राहुल ने मुस्कुराते हुए मेरे लाल चूड़ा पहने हुए हाथ को अपने हाथ में पकड़ते हुए कहा. मेरे हाथों का चूड़ा ज़ोर से खनक उठा और मेरा मन भी.

'हां, चलो.' मैंने कहा और हम अपने होटल की तरफ़ चल दिये.

तुम दोनों लोग बहुत अच्छे हो, हां बहुत प्यारे भी. मेरे कानों में उसके कहे ये शब्द अभी भी गूंज रह थे, वह सिर्फ़ नाम की राशीदा नहीं बल्कि समझदार, बुद्धिमान और अपनी उम्र से ज़्यादा परिपक्व थी.

२०० डी, कॉलेज़ रोड,
बरेली- २४३००१
मो. : ९४५८६०६४६९.
ईमेल : seema4094@gmail.com

निर्णय

■ डॉ. सी. भास्कर राव

जन्म : २२.९.१९४१.

शिक्षा : एम. ए., पी-एचडी/हिंदी. अवकाश प्राप्त हिंदी प्राध्यापक. वरिष्ठ हिंदी गद्य लेखक. अब तक साहित्य और सिनेमा पर पचास से अधिक पुस्तकें प्रकाशित.

२०१८ में मॉरीशस में विश्व हिंदी सम्मान से अलंकृत.

मैं सचमुच समझ नहीं पा रही हूं कि अपनी यह बात कहां से शुरू करूं. बेहतर शायद यही होगा कि बात अपने बचपन से ही आरंभ करूं. मुझे ठीक-ठीक याद भी नहीं है कि जब मां की मृत्यु हुई थी, उस समय मेरी कितनी उम्र थी. बस मुझे इतना ही याद है कि तब शायद सातवीं या आठवीं क्लास में पढ़ रही थी. मेरे पिता एक छोटे-मोटे बिज़नेस मैन थे. तब भी हमारा रहन-सहन अच्छा था. घर में किसी चीज़ की कमी नहीं महसूस होती थी. कहते हैं कि सामान्यत: बेटियां अपने पिता की अधिक दुलारी होती हैं, लेकिन मेरे साथ ऐसा नहीं था. मेरे पिता अपने बिज़नेस के सिलसिले में प्राय: शहर से बाहर भी जाया करते थे. बाद में मुझे इस बात की भनक लगी थी कि उनके बाहर जाने के पीछे मामला सिर्फ़ बिज़नेस का ही नहीं था, बल्कि उसके पीछे कोई और भी बात थी. जाने किस शहर में उनका संबंध किसी अन्य महिला से था. तब मैं इन बातों को अधिक ढंग से और विस्तार से नहीं जानती थी, लेकिन एक बात स्पष्ट है कि मेरा लगाव-जुड़ाव मां से अधिक था. मां और पिता के बीच मन-मुटाव का अनुभव मैं भी करती थी, लेकिन उसमें किसी तरह का हस्तक्षेप करने की मेरी उम्र भी नहीं थी. एक तो मेरे पिता घर पर रहते ही कम थे. शहर में होते थे तो अपने बिज़नेस कार्यालय में ही उनका समय अधिक गुज़रता था. एक तरह से मां उनकी उपेक्षा का शिकार थीं. वह बहुत शांत रहती थीं और अपने घर-गृहस्थी के कार्यों में ही अधिक व्यस्त रहती थीं. इसके बावजूद कभी मैंने पिता की उपेक्षा करते हुए उन्हें नहीं अनुभव किया. एक पत्नी और एक मां के धर्म का निर्वाह करने में वह कभी पीछे नहीं रहीं.

शायद मां को यह पता लग चुका था कि पिता के बिज़नेस टूर्स का राज़ क्या है, इसे लेकर वह अपनी आपत्ति भी दर्ज़ करती थीं, लेकिन पिता

का स्वभाव इतना उग्र था कि वह प्रसंग छिड़ने पर वे मां पर ही चीख़ने-चिल्लाने लगते थे और मां नहीं चाहती थीं कि उनके बीच के कलह का स्वर अड़ोस-पड़ोस तक पहुंचे, लेकिन शायद आसपास के घरों के लोग यह जान चुके थे कि मां-पिता के बीच कलह या विवाद के पीछे कोई एक अन्य महिला है. पिता की दो आदतें भी थीं, वे क्लब में जुआ बहुत अधिक खेलते थे और प्राय: वहां अपने कमाए पैसे लुटाते थे और दूसरी बुरी आदत थी, शराब पीने की. उनमें तीनों ऐब थे. किसी दूसरी स्त्री से संबंध, जुआ और शराब. ज़ाहिर है कि इन सबका असर हमारे परिवार पर पड़ना ही था और ख़ासकर मुझ पर, क्योंकि मैं कुछ बड़ी हो रही थी और इन बातों को कुछ-कुछ समझने भी लगी थी. पिता के उग्र स्वभाव से मैं परिचित थी, इसलिए उनसे सामना होने से बचने की कोशिश करती थी. मां के प्रति मेरे मन में सहानुभूति और संवेदना अधिक थी. मैं मां से बहुत कुछ पूछना और जानना चाहती थी, लेकिन मां का स्वभाव इन्हीं सब कारणों से अंतर्मुखी होता जा रहा था. वह पूजा-पाठ में अधिक समय बिताने लगी थीं. ज़्यादातर चुप और शांत रहती थीं. शायद शांत वह केवल ऊपर से दिखती थीं, लेकिन मैं उसके मन के हाहाकार और अशांति को महसूस कर सकती थी.

मेरी देखभाल में मां कभी कोई कमी नहीं रखती थीं. मैंने कई-कई रातें मां को आंसूं बहाते और मौन रूदन करते देखा और अनुभव किया था. जब मेरी उम्र बढ़ने लगी तो मैं मन ही मन मां से मानसिक रूप से अधिक से अधिक जुड़ती गयी और पिता से मेरी दूरी उतनी ही बढ़ती भी गयी. पिता ने लेकिन कभी इसकी चिंता नहीं की. वे अपनी ही दुनिया में व्यस्त और मस्त रहते थे. यहां तक कि वे अपनी मां की भी चिंता नहीं करते थे. दादी की हर बात का ख़्याल मां ही करती थीं. दादी एक तरह से पिता से अधिक मां की मां प्रतीत होती थीं. दादी अपने बिगड़े स्वभाव के बेटे के आचरण को लेकर काफ़ी दुखी रहती थीं, लेकिन वे अपने इस नालायक बेटे से कुछ भी कहना-सुनना शायद व्यर्थ समझती थीं. जैसा कि दादी बताती थीं, दादाजी का स्वभाव भी कुछ-कुछ वैसा ही था. जो बिज़नेस पिता कर रहे थे, उसे दादाजी ने ही शुरू किया था और वे भी इसी तरह अपने ज़ायज-नाज़ायज शौक़ों के पीछे अपना कमाया धन उड़ाया करते थे. पिता अपने पिता पर गये थे, इसलिए दादी को शायद अपने बेटे से कुछ भी कहना व्यर्थ ही लगता था. कई बार मैंने दादी की गोद में अपना सर रखकर मां को रोते देखा था और दादी उन्हें सांत्वना देती थीं और बार-बार एक ही बात दोहराती थीं कि ऊपर वाला सब देख रहा है कि तुम्हारे साथ कितना अन्याय हो रहा है. देखना एक दिन उसे ऐसा सबक सिखाएगा कि तुम्हारे पैरों पर गिरकर वह अपनी इन करतूतों के लिए क्षमा मांगेगा. लेकिन इसकी नौबत ही नहीं आयी और मां की एक दुर्घटना में आकस्मिक मृत्यु हो गयी. मैं बचपन से ही अपने को दादी के सबसे क़रीब अनुभव करती थी. दादी मुझ पर अपना पूरा लाड़ लड़ाती थीं. हमारे बीच उम्र का काफ़ी फ़ासला था, लेकिन हम दोनों जैसे सहेलियां थीं. मैं रातों को दादी के साथ ही सोया करती थी और दादी जाने कब-कब की, कहां-कहां की बातें मुझे बताया-सुनाया करती थीं. अपने बदचलन बेटे के बारे में कुछ कहना वे नहीं चाहती थीं. मैंने दादी से जाने कितनी-कितनी कहानियां सुनी थीं. कुछ सच्ची, कुछ झूठी. लेकिन मैं दादी के वे क़िस्से-कहानियां बड़े मन से सुना करती थी. दादी तब तक मुझे अपनी बातों में उलझाकर रखती थीं, जब तक कि मुझे नींद न आ जाए.

कहा जा सकता है कि तब दादी ही मेरी फ्रेंड फ़िलासफ़र और गाइड थीं. मैं भी अपने लगभग सभी अनुभव दादी से शेयर करती थी और दादी उन्हें कुछ इस तरह ग़ौर से सुनती थी, मानो वे मेरी ही उम्र के आसपास की हों. दादी के कारण ही मुझे उस घर में जीवन का अनुभव होता था. शायद दादी नहीं होतीं तो बहुत संभव था कि किशोर अवस्था में घर की पीड़ा को लेकर मैं आत्महत्या तक कर चुकी होती. इस तरह दादी मेरी लाइफ़-लाइन थीं. अपने स्कूल जाने तक ही मैं मां पर अधिक निर्भर करती थी और स्कूल से लौटकर मेरा शेष सारा समय दादी के इर्द-गिर्द ही घूमता था. दादी को अपनी आपबीती सुनाने के लिए मैं आकुल-व्याकुल रहती थी. स्कूल में सुबह से लेकर शाम तक जो कुछ भी हुआ, उसे जब तक मैं दादी को नहीं सुना देती थी, मुझे चैन नहीं पड़ता था. और दादी भी एक श्रद्धालु श्रोता की तरह मेरी हर एक बात सुनती थीं. मां और पिता के बीच बढ़ते तनावपूर्ण फ़ासले का असर मुझ पर कम से कम पड़े, यही दादी की कोशिश रहती थी. दरअसल दादी के पास

क़िस्से-कहानियों का एक अक्षय भंडार था और अपने अनुभवों का एक विराट संसार. बहुत संभव है कि उनके कुछ अनुभव सच्चे तो कुछ गढ़े हुए हों, लेकिन दादी का सुनाने का तरीक़ा कुछ ऐसा होता था कि उनकी काल्पनिक बातें भी मुझे सच से बढ़कर लगती थीं, जिन्हें मैं अवाक होकर सुनती थी. सच कहूं तो मेरे प्राण दादी में बसते थे. दादी की एक विशेषता यह थी कि वह कोई भी नकारात्मक बात नहीं बताती थीं और मुझे सकारात्मक बातें सोचने और अनुभव करने की प्रेरणा देती थीं. उस घर में दादी नहीं होतीं तो वह घर मेरे लिए किसी श्मशान से कम नहीं होता. दादी थीं, तभी उस घर में जीवन था. कहा जा सकता है कि दादी मेरे लिए एक साए की तरह थीं, जो मुझे हर जाड़े, गर्मी, बरसात की मार से बचाती थीं. वे मेरी एक मात्र सच्ची दोस्त थीं. मैं उनके बिना अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर पाती थी. घर में दादी थीं और मैं उस घर में दादी की वजह से थी. हमारे तन अलग थे, लेकिन प्राण एक थे. मैं हमेशा उन्हें कहती थी — दादी द ग्रेट. तब मैं मन ही मन मनाती थी कि हर एक को एक ऐसी ही दादी मिले. फिर तो किसी का भी जीवन धन्य हो जाएगा. धीरे-धीरे जैसे दादी मेरे तन-मन में समाती जा रही थीं.

तब शायद मैं सातवीं या आठवीं में पढ़ रही थी और हमें आमंत्रण मिला कि अपने ही शहर में रहने वाली हमारी एक मात्र छोटी मौसी का विवाह निश्चित हो गया है. मां अपने दुःख और उदासी के बावजूद ख़ुश थीं कि आख़िर मौसी ने विवाह के लिए अपनी स्वीकृति दे दी. मौसी किसी कॉरपोरेट कंपनी में काम करती थी और जाने क्यों उसने ज़िद बांध ली थी कि वह विवाह नहीं करेगी. उनके परिवार के लोग समझा-बुझा कर थक-हार चुके थे और एक लंबे समय तक उसके लिए कोई लड़का खोजना भी बंद कर दिया था. फिर शायद मौसी का मन कुछ बदला. अब यह पता नहीं कि उसने स्वेच्छा से शादी के लिए हां कहा या फिर किसी दबाव वश. वैसे मौसी बड़े स्वतंत्र विचारों की थी और वह अपना सारा निर्णय ख़ुद लेती थी. मेरा अनुमान है कि मां के वैवाहिक जीवन की कटुता को देखते हुए ही उसने एक लंबे समय तक अपना विवाह टाल रखा था. मैं मौसी को बहुत पसंद करती थी. वह बड़ी ख़ुद्दार थी. किसी के सामने झुक जाना, समझौता कर लेना या अपनी हार मान लेना वह स्वीकार नहीं करती थी. यह भी मुझे ठीक-ठीक मालूम नहीं है कि यह विवाह मौसी की अपनी पसंद से हो रहा था या कि उसके परिवार के लोगों ने जिस लड़के को पसंद किया था, उस पर मौसी ने मुहर लगा दी थी. कारण चाहे जो भी हो यह एक बेहद ख़ुशी का मौक़ा था और एक लंबे समय के बाद यह अवसर आया था. मां तो ख़ुश थीं और मैं अधिक ही उत्साह में थी. वास्तव में मैं मौसी को अपना रोल माडल मानती थी. पूरी तरह स्वतंत्र विचारों वाली और आत्मनिर्भर. हमारे यहां मौसी बहुत कम आती थी. आती भी थी तो यह जानकर कि पिता घर से बाहर हैं, यानी बिज़नेस टूर के नाम पर शायद अपनी रखैल से मिलने गये हैं. तब वह मां को बहुत समझाती थी. बार-बार यही कहती थी कि आख़िर मां इस कपटी और चरित्रहीन पुरुष को क्यों झेल रही है, जो उसे शारीरिक और मानसिक कष्ट का शिकार बना रहा है. वह तो तलाक तक लेने की सलाह देती थी. शायद दो-एक वकीलों से उसने इस विषय में बात भी की थी और उन्होंने कहा भी था कि मां का केस अपने पक्ष में काफ़ी मज़बूत है. उसे तलाक भी मिल जाएगा और अच्छा-ख़ासा गुज़ारा भत्ता भी. केस में मां की जीत लगभग पक्की है, लेकिन मां इसके लिए कभी राज़ी ही नहीं होती थीं, जब कि मुझे ऐसा लगता था की मौसी बिलकुल सही सुझाव दे रही हैं. मैं इन बातों में हस्तक्षेप करने की स्थिति में नहीं थी, इसलिए चुप रहती थी. मेरे सामने कभी ऐसा नहीं हुआ कि मौसी का सामना पिता से हुआ हो. शायद ऐसा हो पाता तो पिता को कोसने में वह कोई कोर-कसर नहीं छोड़ती. मां यह चाहती भी नहीं थीं, इसलिए उनकी कोशिश भी यही होती थी कि मौसी उसी समय घर आएं जब कि पिता शहर से बाहर हों.

यह तय था कि शादी में हमें हर हाल में जाना ही है. एक तो इतने लंबे समय के बाद विवाह का यह संयोग जुटा था और उस पर उसी शहर में विवाह का आयोजन था, लेकिन पिता ने शुरू से ही बहानेबाजी आरंभ कर दी थी. उनकी एक ही दलील थी कि उन दिनों उन्हें एक आवश्यक बिज़नेस कॉफ्रेंस में जाना है. जबकि हम अच्छी तरह से यह जान रहे थे कि वह कैसी कॉफ्रेंस है. इस बार और पहली बार मां ने ज़िद कि कि उन्हें विवाह में शामिल होना ही है. आख़िर यह उसकी एक मात्र छोटी बहन की शादी का मामला था. पहली बार दादी ने भी उन्हें समझया और प्रकारांतर से उन

पर दबाव बनाया कि न जाने पर जग हंसाई होगी. बहुत दबाव डालने पर पिता बेमन से तैयार तो हो गए, लेकिन जिस शाम हमें शादी में शामिल होने जाना था, उन्होंने ख़ूब शराब पी रखी थी. गाड़ी उन्हें ही चलानी थी. दादी अपने घुटनों के दर्द के चलते विवाह में शामिल नहीं हो सकती थीं, इसलिए भी उन्होंने पिता पर कुछ दबाव बनाया था. उन्होंने यहां तक कह दिया था कि यदि इस विवाह में वे शामिल नहीं होंगे तो वे आत्महत्या कर लेंगी. शायद इन्हीं सब बातों का प्रभाव था कि वे किसी तरह मान तो गए, लेकिन मारे ग़ुस्से के उन्होंने उस शाम अधिक शराब पी रखी थी. वे सड़क पर गाड़ी बहुत तेज़ और बेतरतीब चला रहे थे. मां सामने उनकी बगल में बैठी थीं और पीछे मैं अकेली. मेरी धड़कनें यों भी बहुत तेज़ हो रही थीं. किसी अनहोनी की आशंका से मन घबरा रहा था कि तभी जाने क्या हुआ कि एक तेज़ धमाका हुआ और हमारी गाड़ी एक डिवाइडर से टकराकर उलट गयी. काफ़ी दूर तक वह घिसटती गयी थी. मैं बेहोश हो गयी थी. पिता को काफ़ी चोटें आयी थीं और मां की घटनास्थल पर ही अकाल मृत्यु हो गयी थी.

इस तरह मैंने अपनी मां को हमेशा के लिए खो दिया था. कुछ ही समय बाद पिता का रवैया फिर से यथावत हो गया था. ऐसा लगता था कि मां की मृत्यु का उन्हें कोई गम ही नहीं था. दादी का रो-रोकर बुरा हाल था. मुझे ही काफ़ी समय तक उन्हें संभालना पड़ा था. अपने इस सदमे से निकलने में मुझे और दादी को काफ़ी समय लगा था. अब पिता और अधिक दिनों के लिए बाहर रहने लगे थे. मेरे प्रति तो जैसे उनकी कोई ज़िम्मेदारी ही नहीं थी. मां की मृत्यु ने मुझे और दादी को एक दूसरे के और भी क़रीब ला दिया था. दादी ने ही अब मेरे लिए मां की जगह ले ली थी. मैं और दादी जैसे एकसार होने लगे थे. उस घर में जैसे दो द्वीप बन गए थे. एक द्वीप मेरे और दादी का और दूसरा द्वीप पिता का. मां की मृत्यु के साल भर के भीतर ही पिता अपनी उस रखैल को घर ले आये थे और अपनी पत्नी का दर्ज़ा दे रखा था. बिना शादी-ब्याह के भी. उन्हें दुनिया की कोई चिंता-फ़िक्र नहीं थी. अपनी मौज-मस्ती के लिए वे किसी भी हद तक जा सकते थे. जब वह महिला हमारे घर स्थाई रूप से रहने आयी, तब पहली बार दादी ने इसका पुरज़ोर विरोध किया था, लेकिन न तो इसका कोई असर पिता पर पड़ा और न ही उस महिला पर. वह एक तेज़ तर्रार महिला थी. उसका पूर्ण नियंत्रण पिता पर था. पिता मानो उसके इशारे पर नाचते थे. मेरा कोई संवाद उससे नहीं होता था और न ही वह मेरी उपस्थिति को लेकर कोई चिंता करती थी. दादी उसकी आंखों का कांटा बन चुकी थीं. वह आए दिन किसी न किसी बात को लेकर दादी से उलझ पड़ती थी और पिता उसी का समर्थन करते थे. वह महिला मेरी उपेक्षा करती थी, यह तो मुझे सह्य था, लेकिन जिस तरह वह दिन-रात दादी के पीछे पड़ी रहती थी, वह धीरे-धीरे मेरे लिए असह्य होने लगा था और मैं दादी का पक्ष लेकर उससे भिड़ जाती थी और उसी का परिणाम था कि मुझे कई बार पिता के क्रोध का शिकार होना पड़ा था. एकाध बार उन्होंने मुझे तमाचा भी जड़ दिया था और मेरा मन पिता के प्रति क्षोभ और घृणा से भरता जा रहा था. दादी पर किसी भी तरह का अन्याय-अत्याचार मेरे लिए बर्दाश्त से बाहर होता जा रहा था. मैं बड़ी होने लगी थी. फिर भी ख़ुद इतनी आत्मनिर्भर नहीं थी कि दादी को लेकर कहीं और अकेली रह पाती.

एक दिन कॉलेज़ से लौटकर मैंने देखा कि दादी घर पर नहीं हैं. मैं बिफर उठी. चीख़ने-चिल्लाने लगी. उस महिला ने मुझसे कुछ नहीं कहा. पहली बार मैं पिता के सामने जैसे तनकर खड़ी हो गयी और दादी के बारे में सीधे सवाल पूछा. पिता ने सिर्फ़ इतना ही कहा कि उन्होंने अपनी मां को उनकी इच्छानुसार ही तीर्थ यात्रा के लिए भेज दिया है. कहां भेजा? किसके साथ? इन सब मेरी बातों का कोई जवाब देने की भी उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी. मुझे उन्होंने बुरी तरह झिड़क दिया था. साफ़ कह दिया कि मैं उनकी आंखों से दूर हो जाऊं. अब उस घर में रहना मेरे लिए दूभर होता जा रहा था. उन दिनों मैं भयानक द्वंद्व में जी रही थी. मां की अकाल मृत्यु और घर में दादी के न होने से मेरा मन भीतर से मरने लगा था और बार-बार मुझे लगता था कि मैं भी वह नर्कनुमा घर छोड़कर कहीं भाग जाऊं या फिर आत्महत्या कर लूं. इसी कशमकश की स्थिति में एक दिन मैंने मौसी को फ़ोन करके सारी बात बतायी और फूट-फूट कर रोने लगी. मौसी ने मुझे आश्वस्त किया कि मैं अधिक चिंता न करूं और वह कोई न कोई उपाय करेगी. मैं मौसी पर बहुत अधिक भरोसा रखती थी, इसलिए धैर्यपूर्वक मौसी की प्रतीक्षा करने लगी. एक दिन मौसी आयीं, अपने पति के

साथ. संयोग से तब घर पर न पिता थे और न ही वह महिला. वे लोग शायद क्लब गये थे. पता था कि नाच-गाकर पी-पाकर दोनों झूमते हुए देर रात लौटेंगे. मौसी ने युद्धस्तर पर मेरा सामान बांधा और मुझे अपने घर ले गयी. अपना वह नया घर, जिसमें वह अपने पति के साथ रहती थी. मौसी ने मुझे अपने पास ही रख लिया. मुझे अपने संरक्षण में ले लिया. पहले कुछ दिन मैं काफ़ी उदास रही, लेकिन मौसी के प्यार और मौसा के स्नेह ने मुझे बहुत जल्द अपने अवसाद से बाहर निकलने का मौक़ा दे दिया. मैं मौसी के घर रहकर ही कॉलेज़ आने-जाने लगी. पिता ने एक बार भी मेरी खोज-ख़बर लेने की कोशिश नहीं की. अब उन्हें और भी आज़ादी मिल गयी थी और मुझे भी उस नर्क से मुक्ति मिल गयी. मैं फिर से सहज-सामान्य होती गयी. सब कुछ ठीक चल रहा था कि इसी बीच एक अप्रत्याशित बात हो गयी.

मैंने सोशियालॉज़ी विषय ले रखा था और उसी में ऑनर्स की पढ़ाई कर रही थी. विभाग की ओर से हमें विषय से संबंधित व्यावहारिक जानकारी एवं अध्ययन के लिए कुछ विशेष शहरों में टूर पर ले जाया गया था. हमारा अंतिम पड़ाव बनारस था. वहां हमें एक वृद्धाश्रम में ले जाया गया ताकि हम प्रत्यक्षत: वहां रहने वाली महिलाओं से मिलें, उनसे बातचीत करें और अपने नोट्स तैयार करें. वह एक महिला वृद्धाश्रम था, जिसमें केवल महिलाएं ही रहती थीं. वहां जाकर जब हमने वहां रहने वाली महिलाओं का दु:ख-दर्द जानना चाहा तो मैं जैसे असमान से गिरी! उन महिलाओं में दादी भी थीं. बहुत दुबली-पतली हो गयी थीं. देखने में ही बीमार जान पड़ती थी. तब उन्हें दिखाई भी कम पड़ने लगा था. उन्होंने मुझे एकाएक नहीं पहचाना, लेकिन मैं एकदम से उन्हें पहचान गयी. उनसे लिपटकर फूट-फूट कर रोने लगी. वह दृश्य देखकर वहां मौजूद सारे ही लोग हतप्रभ रह गए थे. मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि एक दिन, इतने वर्षों के बाद दादी मुझे इस हाल में वहां मिलेंगी. पिता ने मुझसे झूठ कहा था कि वे किसी महिला दल के साथ तीर्थ यात्रा पर गयी हैं. इससे अधिक उन्होंने मुझे जानबूझ कर कुछ नहीं बताया था. वे असलियत को मुझसे छिपा रहे थे. दादी को घर से और अपनी तथाकथित बीवी से दूर रखने की यह उनकी एक साज़िश थी. अगर मैं स्टडी टूर पर बनारस नहीं जाती तो शायद फिर कभी ज़िंदगी में दादी से मेरी मुलाक़ात नहीं ही होती. शायद बाद में मुझे सूचना दे दी जाती कि वे अब इस दुनिया में नहीं रहीं. मेरे तन-बदन में आग-सी जल रही थी. भीतर हाहाकार मचा हुआ था. लगा, किसी भयंकर तूफ़ान से घिर गयी, वह भी अकस्मात्.

मैं दादी को उस हाल में वहां छोड़कर जाने के लिए किसी भी तरह तैयार नहीं थी. मैं लगातार रोए जा रही थी और मेरी एक ही रट थी कि मुझे हर हाल में दादी के साथ रहना है. वृद्धाश्रम के प्रबंधन ने और हमारे कॉलेज़ के विभागीय शिक्षकों ने मुझे बहुत समझाया कि इस तरह एकाएक दादी को वहां से निकालकर ले जाना संभव नहीं है. यह एक निश्चित प्रक्रिया के तहत ही संभव है. मैंने ज़िद की कि मुझे भी वहीं रहने दिया जाए, जब तक दादी को वहां से निकालने की कोई समुचित व्यवस्था नहीं हो जाती, लेकिन यह भी संभव नहीं था. मैं चाहती थी कि दादी को मैं तत्काल वहां से निकालकर अपने साथ अपने शहर लौटूं और मौसी के यहां ही दादी भी रहें. दादी ने भी मुझे बेहाल होते देखकर समझाया कि सब कुछ इस तरह युद्धस्तर पर नहीं हो पाएगा, इसमें कुछ समय लगेगा. तब तक मैं किसी तरह धैर्य रखूं. बहुत मुश्किल से मैं इसके लिए राज़ी हुई. वहां से लौटते हुए मैं एक बात बार-बार किसी प्रलाप की तरह बोलती जा रही थी कि दादी बहुत जल्द एक दिन मैं तुम्हें यहां से निकालकर ले जाऊंगी. लौटते हुए सारे रास्ते मैं रोती-सुबकती रही. अपने शहर लौटने के बाद मैं जब मौसी के यहां पहुंची तो उससे लिपटकर मैं बुरी तरह रोने लगी, मुझ पर जैसे जैसे बेहोशी छाने लगी थी.

मुझे संभालने में मौसी-मौसा को भी काफ़ी मशक्कत करनी पड़ी. जब उन्होंने मुझे आश्वस्त किया कि वे मुझे लेकर बनारस के उस वृद्धाश्रम में ख़ुद जाएंगे और दादी को वहां से निकालकर ले आएंगे, तभी मैं कुछ शांत हुई. उसके बाद तो जैसे दादी की याद में मैंने खाना-पीना भी त्याग-सा दिया था. हर समय मेरी आंखों में दादी की बीमार छवि बनी रहती थी. मुझे लग रहा था कि अगर दादी को कुछ समय और वहीं रहने दिया गया तो वे शारीरिक और मानसिक रोग का शिकार होकर मर जाएंगी. दादी की चिंता में मेरा कॉलेज़ आना-जाना भी कुछ समय के लिए बंद हो गया. मैं ख़ुद जैसे बीमार रहने लगी. मुझे फिर से स्वस्थ करने के लिए मेरी

चिकित्सा की व्यवस्था की गयी और डॉक्टर की सलाह पर कुछ दिन मुझे अस्पताल में भी रखा गया. वहां जब मेरी हालत कुछ सुधरी तो बस मैं एक ही बात बार-बार रटती रही कि जल्दी चलो दादी को लाने नहीं तो मैं मां की तरह दादी को भी खो दूंगी. आख़िर मौसी-मौसा मुझे लेकर बनारस पहुंचे और वहां लिखा-पढ़ी की रस्म पूरी करके दादी को अपने साथ ले आए. इस तरह मेरी खोयी हुई दादी मुझे फिर मिल गयी. लेकिन दादी पहले की तरह स्वस्थ-सहज नहीं हो पा रही थीं. जिस बेरहमी से उनके बेटे ने सबसे झूठ बोलकर दादी को वृद्धाश्रम के हवाले कर दिया था, उससे वे सदमे की स्थिति में थीं और उससे उबर नहीं पा रही थीं. वे ज़्यादातर चुप और गुम रहने लगी थीं. खोयी-खोयी-सी रहती थीं. जैसे उनकी भूख़-प्यास मर चुकी थी. जो थोड़ा-बहुत खाना उन्हें दिया जा रहा था, बस उसी की बदौलत वे किसी तरह अपने रोगी शरीर को ढो रही थीं. मैं दिन-रात दादी की देखभाल और सेवा में अपने दिन बिता रही थी. मौसी-मौसा ने दादी की देखभाल के लिए एक आया को रख दिया था. मुझे समझा-बुझा कर कॉलेज़ भेजा जाता था ताकि मैं अपनी आगे की पढ़ाई जारी रख सकूं. मैं भी चाहती थी की अपनी एम. ए. की पढ़ाई पूरी करके मैं जल्द से जल्द किसी नौकरी में लग जाऊं ताकि दादी को लेकर अलग रहते हुए उनकी सेवा में अपना शेष जीवन व्यतीत करूं. अब मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य यही रह गया था. आगे जीवन मैं अपने लिए नहीं, बल्कि अपनी दादी के लिए जीना चाहती थी.

जो दादी पहले थीं, उसका दस-बीस प्रतिशत भी वे नहीं रह गयी थीं. कई बार अपने पिता और उसकी रखैल को लेकर मेरे मन में बदले की तीव्र भावना बलवती होती जाती थी. इच्छा होती कि दोनों की हत्या कर डालूं और पुलिस के सामने जाकर ख़ुद को सरेंडर कर दूं. मौसी मेरी मन:स्थिति को अच्छी तरह समझ रही थी, इसलिए मैं ऐसा कुछ न कर बैठूं, इसके लिए वह अतिरिक्त सचेत रहती थी और मौसा भी एक तरह से मेरी कौन्सिलिंग करते रहते थे ताकि मेरे भीतर नकारात्मक और हिंसक भावनाएं न पनपें. यदि वे दोनों मुझे नहीं संभालते तो शायद सचमुच मैं कुछ कर बैठती. इस बीच मेरी सालाना परीक्षाएं भी आ गयीं. मेरा ध्यान स्वाभाविक रूप से कुछ बंट गया. मुझे अच्छा रिज़ल्ट लाना था ताकि कोई जॉब मुझे मिल सके. मैंने अंतिम समय में अपनी इच्छा शक्ति के ज़ोर पर अच्छी तैयारी की, जिससे मेरे पेपर्स अच्छे हुए और आशातीत रूप में मुझे प्रथम श्रेणी मिली. एक इंटर कॉलेज़ में मेरी नियुक्ति भी हो गयी.

मैंने दादी के साथ रहने के लिए एक बेड रूम वाला फ़्लैट भी किराए पर ले लिया. हालांकि मौसी-मौसा नहीं चाहते थे कि दादी को लेकर उनसे अलग रहूं. चूंकि दादी के रोग, बुढ़ापे और मानसिक अवसाद के चलते लगातार बढ़ रहे थे, इसलिए उनका कहना था कि मैं वहीं उनके साथ रहूं, लेकिन मेरी ज़िद थी कि नहीं, मैं दादी को लेकर अलग ही रहूंगी और शेष जीवन उनकी देखभाल और सेवा में बिताऊंगी. मेरी ज़िद आख़िर उन्हें माननी ही पड़ी. उन्होंने यह अवश्य कहा कि मैं आया को भी साथ रख लूं ताकि जब मैं अपने कॉलेज़ जाऊं तो वह दादी की देखभाल कर सके. यहां तक कि आया का मासिक वेतन देने के लिए भी वे राज़ी थे. वे जानते थे कि मेरे फ़्लैट का क़िराया हमारे खाने-पीने तथा दवा-इलाज़ का ख़र्च इतना होगा कि मेरे एक वेतन से सारा ख़र्च संभलेगा नहीं. मैंने तब तक के लिए इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, जब तक कि मैं पूरी तरह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न हो जाऊं. मेरे लिए थोड़ी ख़ुशी और आश्वस्ति की बात यह थी कि दादी भले ही शारीरिक रूप से अब भी कमज़ोर हों, लेकिन मानसिक रूप से वे क्रमश: स्वस्थ हो रही थीं. उनका अवसाद घटता जा रहा था. वे अब कुछ-कुछ बोलने भी लगी थीं. अब भी मैं दादी के साथ ही रात को सोती थी और पहले दादी मुझे किस्से-कहानियां सुनाती थीं और अब मैं सुनाने लगी. अपने रोज़ के अनुभव उनसे बांटती थी. दादी उन्हें सुनने में अपना मन लगाने का प्रयास कर रही थीं, जो मेरे लिए एक शुभ लक्षण था. दादी के साथ मेरा जो रिश्ता आकस्मिक रूप से टूट-सा गया था, वह फिर से क्रमश: जुड़ने लगा था.

लंबे इंतज़ार के बाद आख़िर वह दिन आ ही गया, जब मैं दादी और आया के साथ अपने नये फ़्लैट के लिए रवाना हो गयी. इससे पूर्व ही मौसी-मौसा के सहयोग से फ़्लैट में ज़रूरत का सामान जुटा लिया गया था. वह सारा ख़र्च उन्होंने ही उठाया था. मेरी तो नयी नौकरी लगी ही थी, इसलिए संभव नहीं था कि मैं वहां आवश्यक सामान और

(शेष भाग कृपया २२ पर देखें...)

उसका आना

■ प्रगति गुप्ता

गत पच्चीस-छब्बीस वर्षों से सोशल-मेडिकल पैशंट कॉउन्स्लर. गद्य और पद्य विधाओं में देश-विदेश की विभिन्न साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं हंस, आजकल, कथाबिंब, गगनांचल, नई धारा, मधुमती, साहित्य भारती, राजभाषा विस्तारिका (कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय), साहित्य अमृत, कथा-क्रम, लमही, साहित्य-परिक्रमा, समावर्तन, राग-भोपाली, अक्षरा, हिंदुस्तानी जुबान, पुरवाई, अमर उजाला, राजस्थान पत्रिका, दैनिक जागरण, दैनिक ट्रिब्यून, नई दुनियां.....जैसी कई और प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में सृजन का निरंतर प्रकाशन.

आकाशवाणी और जयपुर दूरदर्शन से नियमित प्रसारण. गत चार वर्षों से समाचार पत्र दैनिक ट्रिब्यून (पंजाब) के लिए समीक्षक की भूमिका का निर्वहन. दस पुस्तकें प्रकाशित. लगभग सभी पुस्तकों को किसी न किसी रूप में पुरस्कार या सम्मान. कहानियों पर शोध. कई कहानियां, लघु उपन्यास व लेख पुरस्कृत.

शहर की एक बड़ी समाजसेवी संस्था के आयोजन में मुख्यमंत्री द्वारा सम्मानित होना कस्तूरी के लिए ख़ुशियों भरा पल था. संपूर्ण आयोजन के दौरान कस्तूरी अपने भावों पर काबू करने की कोशिश करती रही मगर उसकी आंखों की नमी सूखने का नाम ही नहीं ले रही थी. विवेक ने कई बार उसके हाथों को प्यार से सहलाया ताकि वह संभल जाए मगर उसके भावों का उद्वेग अश्रुओं के संग उमड़ने को बेताब था. आयोजन से लौटते समय कस्तूरी ज्यों ही गाड़ी में आकर बैठी फूट-फूट कर रो पड़ी.

'इतना भावुक होना ठीक नहीं है कस्तूरी...क्या हो गया है तुमको? सम्मान या पुरस्कार मिलना तो इंसान को मुस्कुराने की वज़ह देता है मगर तुम तो...' विवेक ने कस्तूरी के हाथों पर अपना हाथ रख सांत्वना देने की कोशिश की.

'विवेक! आज जिस उपलब्धि के लिए मुझे सम्मानित किया गया है... उससे जुड़ी यात्रा का श्रेय जिसे मिलना चाहिए... वह अब साथ नहीं है. इक्कीस साल कम नहीं होते... एक साल पहले जिस दिन हमारी बेटी ने विदा ली थी, उसी दिन मुझे सम्मान मिलना... इतनी-सी बात तुम समझ नहीं पाए.' कस्तूरी ने सुबकते हुए कहा. कस्तूरी की पीड़ाएं बहकर ही शांत हो सकती थीं.

'कस्तूरी... मैं सब समझता हूं... अब तुम्हें ख़ुद को भी संभालना चाहिए. मैं बोलता नहीं हूं मगर इसका अर्थ यह नहीं कि समझता नहीं हूं. अपना मन ठीक करने की कोशिश करो. शाम को पार्टी के कुछ लोग तुमसे मिलने आ रहे हैं. मैं भी जल्दी घर पहुंच जाऊंगा. अगर तुम्हारा मन ठीक होगा तो डिनर बाहर करेंगे...'

कस्तूरी ने जैसे ही सहमति में सिर हिलाकर मुस्कुराने की कोशिश

की... वह भी मुस्कुरा दिये. कस्तूरी को घर पर छोड़कर अपनी फ़ैक्ट्री के लिए निकल गये.

घर में घुसते ही कस्तूरी ने मां के पैर छूकर उनका आशीर्वाद लिया. बग़ैर कपड़े बदले अपनी बेड साइड पर जाकर जैसे ही लेटी, आंसुओं ने उसके तकिये को भिगोना शुरू कर दिया. पहली बार उसे बग़ैर काम किये इतनी अधिक थकान महसूस हो रही थी. इतनी थकान तो उसे वेदिका को सोलह से अठारह घंटे संभालने में भी नहीं हुई थी.

गुज़रे हुए इक्कीस सालों में विवेक और कस्तूरी के बीच संवादों के जो सिरे टूट गये थे, वे अब पुनः बंधना शुरू हो गये थे. वेदिका के आगे-पीछे घूमती हुई आंखें हरदम उसी का स्पर्श करना चाहती थीं. मस्तिष्क-पक्षाघात (सेरेब्रल पाल्सी) से पीड़ित बेटी की संभाल करते-करते, एक मां अपने पति-पत्नी वाले रिश्ते को भूल ही गयी थी. वेदिका के आने के बाद दोनों के बीच जो भी हुआ बस यंत्रवत हुआ. घर की दूसरी ज़िम्मेदारियां भी साथ में निभती चली गयीं. वेदिका से जुड़े हर निर्णय में विवेक ने मन से साथ दिया. वेदिका के अचानक चले जाने के बाद उन्होंने हमेशा साथ होने का आश्वासन दिया.

आज के आयोजन के लिए जब कस्तूरी साड़ी पहनकर शीशे के सामने खड़ी हुई तो विवेक ने कहा...

'कस्तूरी! आज शहर के नामी लोगों की उपस्थिति में तुमको सम्मान मिलने वाला है. अपने बालों को कलर कर लेतीं तो अच्छा लगता. बहुत भाग-दौड़ कर चुकी हो... अब ख़ुद के लिए भी सोचना शुरू करो.'

विवेक की बात सुनकर कस्तूरी की आंखें भर आयी थीं. विवेक ने भी गुज़रे हुए सालों में शायद ही इतने ध्यान से उसे कभी नहीं देखा था कि टोकता. उसने भी तो बरसों से विवेक का ख़्याल वैसे नहीं रखा था जैसे वेदिका के होने से पहले रखती थी. अच्छे से तैयार हुए उसे सालों हो गये थे. वेदिका का बिस्तर शीशे के सामने होने के कारण कस्तूरी की निग़ाह ख़ुद पर कम वेदिका पर ज़्यादा होती थी. वेदिका के जाने के बाद शीशे के सामने खड़ा होना, अक़्सर ही उसे रुला देता था. वेदिका दोनों की ही प्राथमिकता बन गयी थी.

अपनी बातों को मन ही मन दोहराते हुए वह अतीत की सीढ़ियां उतरने लगी.

विवाह के सात साल बाद उसने गर्भ-धारण किया था. बहुत पूजा-पाठ के बाद ईश्वर ने ख़ुशियां दी थीं. कस्तूरी हर पल को जीना चाहती थी. मां को जैसे ही पता चला उन्होंने अन्य ज़रूरी बातों के साथ अपनी इच्छा भी ज़ाहिर कर दी...

'विवेक का इतना बड़ा व्यवसाय है. अगर पहला बेटा हो जाए तो वह अपने बाप का हाथ बटाने को समय आने पर खड़ा हो जाएगा.'

मां की बात सुनकर कस्तूरी स्वयं को बोलने से रोक नहीं पायी थी...

'मां! आज कल लड़का हो या लड़की सभी काम करते हैं. जहां तक मदद का सवाल है, विवेक मुझसे भी ले सकते हैं. शादी से पहले मैं नौकरी करती ही थी... आप आशीर्वाद दीजिए बच्चा स्वस्थ पैदा हो.'

इस ख़बर से घर में ख़ासी रौनक थी क्योंकि विवेक अपने मां-बाप की इकलौती संतान थे. मां का टेस्ट करवाने के लिए बोलना किसी और वज़ह से था जबकि कस्तूरी बच्चे के स्वागत की तैयारी के हिसाब से टेस्ट करवाना चाहती थी. तभी कस्तूरी ने चौबीस हफ़्तों बाद टेस्ट करवाया. उसने जब मां को भ्रूण का बेटी होना बताया.. वह बोली...

'बहुत ज़िद्दी हो तुम. पहले टेस्ट करवा लेती तो कम से कम...'

मां अपनी बात को अधूरा छोड़कर भुनभुनाती हुई अपने कमरे में चली गयी थी.

कस्तूरी किसी भी क़ीमत पर जीव हत्या नहीं कर सकती थी. कस्तूरी को उसकी समर्थता ने बहुत हिम्मत दी थी. विवेक भी हमेशा स्वस्थ बच्चे की कामना करते रहे. उन्होंने कभी लड़का या लड़की जैसी बातें नहीं कीं. बच्चे के आने की ख़बर ने कस्तूरी के स्वप्नों को विस्तार दे दिया था. कस्तूरी घर के कामों में फ्री होकर अजन्मी बच्ची से ख़ूब बातें करती और बच्चों से जुड़े गीतों को गाती-गुनगुनाती. विवेक उसके व्यवहार को देखकर टोक देते.

'कस्तूरी! मां कई बातें अपने अनुभवों से कहती हैं. उन बातों पर भी ध्यान दिया करो... ज़्यादा ख़ुश होने से नज़र लग जाती है...'

'विवेक! मैं ऐसा कुछ भी नहीं करती हूं कि बच्चे को नज़र लगे. बच्चे के साथ वक़्त गुज़ारना उसे स्वस्थ बनाता है. देखिएगा समय आने पर हमारे बहुत प्यारी बिटिया होगी. डॉक्टर कहते हैं... 'होने वाले बच्चे से ख़ूब बातें करो... वह

प्रतिक्रियाएं देगा. पौराणिक कथाओं में भी इस तरह की न जाने कितनी बातें हैं. मां के कहने पर हर रोज़ ही कुछ न कुछ पढ़ती हूं ताकि हमारी बच्ची पढ़ने-लिखने में तेज़ दिमाग़ की हो.'

'कस्तूरी... मैं यह सब बातें समझता हूं. मैं भी तो बच्ची का बाप बनूंगा. बहुत ज़्यादा ख़ुश होना शायद...'

विवेक की बातें सुनकर कस्तूरी की चहचहाट कुछ दिनों को कम हो जाती. मगर मां बनने की ख़ुशी उसे उमंगित कर वापस चहकने पर उकसा देती. नौ महीने कैसे निकल गये कस्तूरी को भी पता नहीं चला.

कस्तूरी को वेदिका के जन्म लेने के बाद महसूस हुआ कि कैसे ख़ुशियां अचानक गुम भी हो सकती हैं. ढाई किलो की नवजात वेदिका जब जन्म लेने के बाद डॉक्टर्स के बहुत रुलाने पर भी नहीं रोयी, तो कस्तूरी के सब स्वप्न बिखर गये. नवजात के मस्तिष्क में ऑक्सीजन पूरी न पहुंचने के कारण उसे मस्तिष्क–पक्षाघात हो गया था. काफ़ी कोशिशों के बाद वेदिका बहुत हल्का-सा कुनमुनायी. विभिन्न जांचों से पता चला उसके मस्तिष्क का कुछ भाग काम नहीं कर रहा था.

वेदिका के जन्म के साथ मौन हुई कस्तूरी दो दिन बाद जब रोयी तो उसके आंसुओं के सैलाब संग असंख्य पीड़ाएं बिखर गयीं. दर्द और पीड़ाओं के असल मायने क्या होते हैं उसे क्षण भर में महसूस हो गये.

कस्तूरी ख़ुद को कोसने लगी थी... 'मेरी बेटी को मेरी ही नज़र लग गयी... अपनी बच्ची की पीड़ाओं के लिए मैं ही ज़िम्मेदार हूं...' कुछ समय के लिए कस्तूरी की संवेदनाओं पर भी पक्षाघात हो गया था.

मां भी बौखलाहट में कुछ न कुछ बोल रही थी....

'पहले ही बोला था...जल्दी टेस्ट करवा लो. न लड़की होती न ऐसा भुगतना पड़ता.'

मां को कौन समझाता अगर ऐसा ही बच्चा ईश्वर को सौंपना था तो बेटा होता या बेटी, उसके साथ ऐसा ही होता. दरअसल मां भी इस अप्रत्याशित हादसे से बौखला गयी थी. कस्तूरी ने किसी भी नकारात्मक बात को अपने भीतर ठहरने नहीं दिया. ईश्वर की मर्ज़ी के आगे उसने अपना सिर झुका दिया. विवेक चुप थे मगर उन्होंने कभी कुछ नकारात्मक नहीं कहा. ऐसे में विवेक का साथ होना कस्तूरी के लिए संबल था. कस्तूरी को मातृत्व का सुख नवजात से बांध रहा था मगर उसकी अशक्तता तोड़ रही थी. बार-बार यही ख़्याल

उसे कमज़ोर कर रहा था कि 'कैसे संभाल पाएगी ऐसी संतान को.'

गुज़रते हुए समय के साथ उसने नियति को स्वीकार कर अपने कर्मों पर स्वयं को केंद्रित किया... 'अगर ईश्वर चाहते हैं मैं अपनी बच्ची को लाड़-दुलार करूं तो इनकार करने वाली मैं कौन होती हूं...?' कस्तूरी ने ख़ुद को मानसिक रूप से तैयार किया. विवेक हर सुविधा देने को तैयार थे मगर वेदिका को पालने में उनके सहयोग का आश्वासन व्यस्तताओं की वज़ह से नहीं था.

मां सोलह से अठारह घंटे कस्तूरी को वेदिका के साथ लगा हुआ देखतीं तो कहती... 'घर में नौकरों की कमी नहीं है. एक सेविका वेदिका के लिए भी रख लो. ताकि कुछ और भी देख सको.'

समय के साथ निशक्त होती मां को कस्तूरी का घर की ओर कम ध्यान देना अखरता था और कस्तूरी को मां का मां बनकर न सोच पाना. सभी की मनःस्थिति कस्तूरी को समझ आ रही थी. निशक्तता इंसान को स्वार्थी बना ही देती है. ऐसे में ख़ामोश रहकर काम करना ही कस्तूरी को ऊर्जित महसूस करवा सकता था.

कस्तूरी ने नवजात का नाम वेदिका पहले से ही सोचा हुआ था. उसकी हर चीज़ का रंग गुलाबी और नारंगी था. कुछ समय के लिए हालांकि सभी रंग धुंधले हो गये थे. मगर कस्तूरी ने नए रंगों से वेदिका को सजाने के लिए ख़ुद के

हाथों में ब्रश थामने का निर्णय ले लिया था.

कस्तूरी वेदिका के साथ घंटों लगी रहती. उसे अपने स्तनों से उतरे हुए दूध को पिलाने की भरसक कोशिश करती. ताकि उसका विकास अच्छे से हो. उसकी कोशिशें जब नाकाम हो जातीं, फूट-फूटकर रो पड़ती. उसके खाना न खाने पर ख़ूब मनाती, उससे लगातार बातें करतीं. उम्र के हिसाब से छोटी-छोटी ज़रूरतों की कल्पना कर उसका ख़्याल रखने की कोशिश करती. कस्तूरी की दुनिया वेदिका के इर्द-गिर्द ही सिमट गयी थी.

वेदिका में कभी ख़ुद से दूध गटकने या खाना चबाने की क्षमता विकसित नहीं हो पायी. वेदिका जब तक जीवित रही उसने पीसा हुआ खाना ही खाया. शुरू-शुरू में वेदिका का शरीर प्रतिक्रियाहीन पड़ा रहता. मगर कस्तूरी की मेहनत की वज़ह से वेदिका में कई परिवर्तन आये. घर का कोई भी सदस्य वेदिका के पास पहुंचता, वह मुस्कुरा जाती थी और अकेला होने पर ग़ुस्सा होती थी. कस्तूरी ने उसे कभी अकेला नहीं छोड़ा.

कस्तूरी दिन में वेदिका की दो बार मालिश करती,ताकि उसके शरीर में ताकत आये. तकियों का सहारा लगाकर वह उसे बैठाती ताकि एक ही मुद्रा में लेटने से उसके शरीर में घाव न हो जाएं. यही वज़ह थी कि वेदिका के इक्कीस साल के जीवनकाल में उसके शरीर पर कहीं कोई घाव नहीं हुआ. सात-आठ साल की उम्र से वेदिका ने बिस्तर पर थोड़ा-थोड़ा सरकना शुरू कर दिया था. वेदिका की हर छोटी से छोटी नयी गतिविधि कस्तूरी को नयी उम्मीद की ओर ले जाती थी.

कस्तूरी वेदिका के सभी काम गोद में लेकर करवाया करती थी. उम्र के साथ उसका वज़न और लंबाई बढ़ने से कभी-कभी कस्तूरी बहुत थक जाती थी. कस्तूरी अपनी दिन भर की बातें वेदिका से साझा करती थी. वेदिका का मुस्कुरा देना, उसे ऊर्जा से भर देता था.

वेदिका के होने के बाद कस्तूरी ने इस तरह के ख़ास बच्चों के बारे में ख़ूब पढ़ा. उसे कहीं से भी थोड़ी बहुत जानकारी मिलती, वह शोध करती और वेदिका को उसी तरह संभालने की कोशिश करती. सवेरे से शाम कब हो जाती कस्तूरी को पता ही नहीं चलता. कस्तूरी अकेले ही सब करते-करते जब थक जाती तो स्वयं से कहती...

'जब बच्चे स्वस्थ और होशियार होते हैं, तो सबके होते हैं. बीमार होते ही वह सिर्फ़ मां के हो जाते हैं. हर मां को ख़ुद पर भरोसा होता है कि वह अपने प्रेम और मेहनत से बच्चे को समर्थ तो बना देगी. ताकि वह उसके जाने के बाद अपने काम कर सके. बस इसी सोच के साथ वह जी-जान लगा देती हैं. पर हमेशा ऐसा होता कहां है.'

तेज़ सर्दी और गर्मी में वेदिका बहुत जल्दी-जल्दी ज़्यादा बीमार हो जाती थी. उसे ठीक होने में भी काफ़ी समय लगता था. हर बार उसके बीमार होने पर कस्तूरी को लगता मां-बेटी के रिश्ते की डोर टूटने वाली है. कुछ ऐसे ही ख़्याल मात्र से उसकी ऊर्जा टूटने लगती तो ईश्वर से प्रार्थना करती... 'मां-बेटी की इस डोर को बनाए रखना भगवान.'

वेदिका के बार-बार बीमार होने से कस्तूरी को उसको डॉक्टर के पास अक्सर ही जाना पड़ता था. डॉक्टर के फ्री होने पर वह उससे घंटों चर्चा करती और छोटी-बड़ी बातों को समझने की कोशिश करती.

विवेक वेदिका के कामों में हाथ नहीं बंटा पाते थे मगर उन्होंने वेदिका के जन्म लेने के बाद, न कभी कोई फ़रमाइश रखी, न ही कोई उलाहना दी. कस्तूरी के जैसे वह भी समझ चुके थे कि घर में घूमता-फिरता बच्चा नयी बातों के सिरे जोड़ता है. मगर ऐसे बच्चे सिर्फ़ व्यस्तताएं देते हैं, घर की रौनकें नहीं बढ़ाते.

कस्तूरी ने वेदिका के जन्म लेने के पांच साल बाद ही उसके डॉक्टर के साथ मिलकर एक चेरिटेबल स्पास्टिक चिल्ड्रेन होम खोल दिया. ताकि नन्ही वेदिका के साथ-साथ वह ऐसे दूसरे बच्चों को भी ज़रूरी सुविधाएं दे सके, जो उन्हें मिल नहीं पातीं. सेंटर की ख्याति के साथ अन्य शहरों से भी बच्चे आने लगे. वेदिका को बच्चों के बीच रहना अच्छा लगता था और कस्तूरी को वेदिका को ख़ुश देखना.

कस्तूरी ने स्पास्टिक होम में ठहरने और खाने की व्यवस्थाएं भी कर दी थीं. ताकि स्पास्टिक बच्चे अपनी मां के साथ रह सकें. कस्तूरी ने उनके प्रशिक्षण के लिए कई योजनाएं बनायीं, ताकि हर उम्र के बच्चे की शारारिक व मानसिक ज़रूरत के अनुसार प्रशिक्षण देकर सुधार लाया जा सके. कस्तूरी की मेहनत और सुविधाओं की वज़ह से वहां आने वाले बच्चों में काफ़ी सुधार आया. लोगों में इन ख़ास बच्चों के लिए सकारात्मक चेतना और उम्मीद पनपी.

कस्तूरी ने अपने सेंटर में न सिर्फ़ विशेषज्ञ सेवाओं को

बढ़ाया बल्कि कई विशेषज्ञों के पास जाकर ख़ुद प्रशिक्षण भी लिया. ताकि ऐसे बच्चों की बेहतरी के लिए कुछ कर सके.

शुरुआती समय में कस्तूरी को प्रशिक्षण के लिए अन्य शहरों में जाना पड़ा. वेदिका को उसने अपने साथ रखा. वेदिका ने भी उसे कभी तंग नहीं किया क्योंकि उसे तंग करना आता ही नहीं था. उसके लिए मां की उपस्थिति ही काफ़ी थी.

बढ़ती हुई प्रसिद्धि और ज़रूरत ने उसके सेंटर को ख़ूब विस्तार दिया. कस्तूरी ने ऐसे बच्चों की कुछ मांओं को प्रशिक्षित कर उन्हें भी अपने साथ लगा लिया. ताकि वे भी मन से सेवाएं दे सकें.

फिर अनायास इक्कीस साल की वेदिका ने जिस रोज़ अंतिम विदाई ली, सालों साल की व्यस्तता पर एकाएक विराम लग जाने से एक अजीब-सा खालीपन विवेक और कस्तूरी की ज़िंदगी में ठहर गया. कस्तूरी की आंखों में ठहरा हुआ सूनापन विवेक को बहुत क़रीब लेकर आ गया. मां होने के एहसास का छूटना कस्तूरी को बहुत तोड़ गया था. समय के साथ कस्तूरी ने ख़ुद को स्पास्टिक चिल्ड्रन होम के कामों में ही व्यस्त कर लिया था. वहां काम करने से उसे संतुष्टि मिलती थी. विवेक ने उसको हर संभव सहयोग दिया.

आज सम्मान प्राप्त करते हुए कस्तूरी को एक अशक्त बच्चे की ताकत का एहसास हुआ. जिसने अपनी मां को बिस्तर पर पड़े-पड़े उसकी ताकत का एहसास करवा दिया था. साथ ही समाज के लिए बहुत कुछ करने का मक़सद सौंप दिया था. 'वो बरकत बनकर आयी थी... बरस कर चली गयी थी...' वेदिका की संभाल करते-करते कस्तूरी और विवेक ऐसे बच्चों की बेहतरी के लिए बहुत कुछ करते गये.

कस्तूरी ने अपनी स्मृतियों को विराम लगाकर जैसे ही बिस्तर से उठकर वेदिका की तस्वीर के सामने सम्मान–पत्र को रखकर उसके पैरों को स्पर्श किया, वह फिर से सुबक पड़ी. उसने वेदिका की सेवा ईश्वर का उपहार मान कर की थी. वेदिका का डॉक्टर हमेशा कहता था....

'हर विशेष बच्चा एक उद्देश्य से हमारे घर में जन्म लेता है. हमारे कुछ कर्ज़ उससे जुड़े होते हैं. जिन्हें उतारने के लिए ईश्वर ऐसे बच्चों को हमारे पास भेजता है. इनकी ज़िम्मेदारी सहर्ष लेनी चाहिए.'

डॉक्टर की कही हुई बात को कस्तूरी ने जैसे ही याद किया न जाने कहां से कस्तूरी को एक आवाज़ सुनाई दी....

'मम्मा! आप ख़ुश तो हो न?'....

मम्मा शब्द सुनते ही कस्तूरी रो पड़ी. इस शब्द को सुनने के लिए वह तरस गयी थी. आज पहली बार उसने अपनी बेटी की आवाज़ को महसूस किया था. कस्तूरी वेदिका को कैसे बताती कि ख़ास बच्चे अपनी मांओं की सबसे प्यारी संतान होते हैं. वह मन ही मन बुदबुदा गयी...

'तुम्हें तो अपनी अंतिम श्वास तक प्यार करूंगी बेटा. तुम्हारी वजह से तो मुझे पहचान मिली है.'

कस्तूरी ने वेदिका की तस्वीर को वापस चूमा ही था कि घर की सेविका ने उसे मेहमानों के आने की सूचना दी. उसने स्वयं को संयत किया और ड्राइंग रूम में बैठे हुए राज्य की सत्तारूढ़ पार्टी के एम. एल. ए. और अन्य पार्षदों से मिलने पहुंच गयी. पार्टी वाले उसके प्रभावी व्यक्तित्व और समाज सेविका होने की वजह से, अगले चुनावों में उसका नाम प्रस्तावित करना चाहते थे. उसकी जीवन-यात्रा में अब एक नयी शुरुआत होने वाली थी.

५८, सरदार क्लब स्कीम,
जोधपुर-३४२००१
मो. : ०९४६०२४८३४८
ई-मेल:pragatigupta.raj@gmail.com

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

- संपादक

निर्णय... शेष भाग

साधन जुटा सकूं. मौसा और मौसी की भूमिका मेरे माता-पिता की तरह थी, बल्कि उससे भी बढ़कर. वे लोग मेरे जीवन में नहीं होते तो पता नहीं मेरे जीवन की दशा और दिशा क्या और कैसी होती. जिस दिन मैंने यह तय किया था कि अब मैं अपने उस नर्कनुमा घर में नहीं रहूंगी और मौसी के पास चली जाऊंगी, शायद वह मेरे जीवन का सबसे अहम दिन था और एक अहम फ़ैसला. उसके बाद तो मेरे जीवन की दिशा ही बदल गयी थी. फिर तो न मैं किसी कॉलेज़ में पढ़ पाती, न कॉलेज़ की ओर से स्टडी टूर पर जाती और न ही दादी से इस जीवन में दुबारा मुलाक़ात होती. कहते हैं कि जो कुछ जिस रूप में होना होता है, वह पहले से ही तय रहता है. शायद मेरे शेष जीवन या कहूं कि एक नये जीवन की स्क्रिप्ट ख़ुद ईश्वर ने लिखी थी. अब सब कुछ उसी के अनुरूप हो रहा था.

हमें ले जाने के लिए एक टैक्सी की व्यवस्था कर दी गयी थी. मौसी-मौसा चाहते थे कि वे भी हमारे साथ ही फ़्लैट तक आएं, लेकिन मैंने ख़ुद उन्हें मना किया. मेरे मन में यह स्पष्ट था कि आगे की ज़िंदगी मुझे ख़ुद जीनी है और अपनी लड़ाई ख़ुद लड़नी है. बस मैं दादी को एक नया जीवन देना चाहती थी. भले ही वह पूरी तरह संभव न हो, लेकिन कम से दादी पहले जैसी थीं, उसकी आधी भी बन जाएं तो मेरा जीवन सार्थक हो सकता था. अब अपने लिए मेरे मन में कोई इच्छा या महत्वाकांक्षा नहीं रह गयी थी. दादी को पुनर्जीवन मिले, यही मेरे अपने जीवन का भी अंतिम लक्ष्य था. इसी लक्ष्य को साधने के लिए आया को लेकर मैं टैक्सी में अपने नये फ़्लैट की ओर रवाना हो गयी. मौसा कुछ उदास थे, लेकिन मौसी की आंखें बह रही थीं. इतने दिनों में मैं उनके परिवार का एक अनिवार्य हिस्सा बन चुकी थी. वे ठीक उसी तरह मेरे वहां से विदा होने से दुखी हो रहे थे, जैसे कोई बेटी अपने घर से विदा होती है. टैक्सी में बैठने के पहले मैंने दोनों के पैर छूकर आशीष ली और उन्होंने दादी के चरण स्पर्श किये. दादी ने अपना हाथ उनके सर पर रखा. आया सामने ड्राइवर की बग़ल में बैठी थी और मैं दादी के साथ पिछली सीट पर. टैक्सी आगे बढ़ती गयी और पीछे से मौसी-मौसा अपने हाथ हिला रहे थे.

मैंने दादी को अपने क़रीब कर लिया. दादी ने मेरी ओर एक बार प्रेम, स्नेह, वात्सल्य और आशीष के साथ देखा और मेरे सर पर अपना कंधा रख दिया. अनायास उनकी आंखें बहने लगीं. वे ख़ुशी के आंसू थे. मैंने अपने हाथ से दादी के आंसू पोंछे, जैसे उन्हें आश्वस्त कर रही होऊं कि अब उनके जीवन में खोए हुए दिन फिर लौटेंगे. ज़रूर लौटेंगे. दादी काफ़ी हद तक निश्चिंत लग रही थीं, जैसे अरसे बाद वे अपने घर लौट रही हों. मुझे उनके चेहरे पर विश्वास और जीवन की एक नयी चमक दिख रही थी. दादी मेरे कंधे पर अपना सर रखकर ही सो गयीं. जाने कितने दिनों के तनाव और द्वंद्व के बाद एक गहरी और सुकून भरी नींद. टैक्सी अपनी रफ़्तार से आगे बढ़ती जा रही थी और मुझे दादी के संग-साथ एक नया और संभावनापूर्ण तथा सुखद जीवन का रास्ता बहुत साफ़ तथा चमकीला दिख रहा था. मैं अपने अतीत को पीछे छोड़ती जा रही थी और एक नये भविष्य की ओर बढ़ती जा रही थी. मेरे साथ मेरा सबसे बड़ा संबल था, मेरी — दादी द ग्रेट!

५९/बी-रोड, एयरबेस कॉलोनी,
कदमा, जमशेदपुर-८३१००५(झारखंड)
मो. : ९४३१३-७३९२१.
ई-मेल : dr.bhaskar1.rao@gmail.com

लेटर बॉक्स... शेष भाग

उसमें तीसेक कहानियां शामिल थीं. 'उसका सच' कथा का स्पर्श आज भी आसपास है. ऐसे दमदार अंक आज कम ही आ रहे हैं.

मैं १९६५-६६ से ज्ञानोदय, धर्मयुग, नई कहानियां, कादम्बिनी, नवगीत आदि में छपता रहा. राष्ट्रीय संस्थानों, मंत्रालयों ने पुरस्कृत-सम्मानित भी किया. अनूदित कार्य को समय देता रहा. पंजाबी कहानी, कविताएं छापना चाहें तो दे सकूंगा. मेरे बच्चे सिडनी में हैं. जाना–आना बना रहता है. आपके परिवार को शुभकामनाएं.

फूलचंद मानव, सर २३९,
दशमेश एन्क्लेव, बकौली-६००४,
जीरकपुर (मोहाली)
मो.: ९३१६००१५४९.

'अंतिम इच्छा'

■ डॉ. रंजना जायसवाल

शिक्षा - एम ए, पी एच डी,
(लखनऊ यूनिवर्सिटी)
स्वतंत्र लेखन - विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, कविता, लेख का प्रकाशन दिल्ली एफ एम गोल्ड, मुम्बई आकाशवाणी और वाराणसी आकाशवाणी से कहानी और लेख आदि का नियमित प्रसारण. राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सामाजिक संस्थाओं के सामाजिक एवं साहित्यिक कार्यक्रमों में नियमित भागीदारी.
शीघ्र प्रकाश्य साझा कहानी संग्रह - ऑरेंज बार पिघलती रही
सम्मान - मुंशी प्रेमचंद सम्मान
(अरुणोदय साहित्यिक मंच, लखनऊ)
रोटरी क्लब, इनर व्हील क्लब जैसी सामाजिक संस्था से साहित्यिक गतिविधियों के लिए पुरस्कृत.

सुबह से यह चौथा फ़ोन था. फ़ोन उठाने का बिल्कुल मन नहीं था पर मां... मां समझने को तैयार ही नहीं थी. फ़ोन की घंटियां उसके मन-मस्तिष्क पर हथौड़े की तरह पड़ रही थीं. अंतत: नेहा ने फ़ोन उठा ही लिया.

'हेलो...'

'हां, मां बोलो...'

'बोलना क्या है. घर में सभी तुम्हारे जवाब का इंतज़ार कर रहे हैं... तुम किसी की बात का जवाब क्यों नहीं देतीं.'

'मां... मां इतना आसान नहीं है यह सब. मुझे सोचने का मौक़ा तो दो.' नेहा ने बुझे स्वर में कहा.

'सोचना क्या है इसमें. तुम्हारी बहन की अंतिम इच्छा थी. क्या बिल्कुल भी दया नहीं आती तुम्हें. उन बच्चों के मासूम चेहरे को तो देखो.'

'मां... मैं समझती हूं पर...'

'पर क्या. वह सिर्फ़ तुम्हारी बहन नहीं थी. मां की तरह पाला था उसने तुम्हें. आज जब उसके बच्चों को मां की ज़रूरत है तो तुम्हें सोचने का समय चाहिए.'

'मां, इतनी जल्दबाजी में इस तरह के फ़ैसले नहीं लिये जाते.'

'हमने भी दुनिया देखी है. ठीक है. अगर तुम्हें उन बच्चों की छीछालेदर मंजूर है तो फिर क्या कहा जा सकता है.'

'मां, यह क्या बात हुई तुम इस तरह की बातें क्यों कर रही हो?' मां का गला भर आया.

'तुम अभी मां नहीं बनी हो न. जब मां बनोगी तब औलाद का दर्द समझोगी. फूल से बच्चे मां के बिना कलप रहे हैं और तुम हो कि सब दरवाज़े बंद करके बैठी हो.'

नेहा का मन ख़राब हो चुका था. क्या इतना आसान था यह सब. चार भाई-बहनों में सबसे छोटी थी वो. सबसे छोटी. सबसे लाडली. पर ज़िंदगी उसे इतने कड़वे और कठिन मोड़ पर लाकर खड़ा कर देगी, उसने कभी नहीं सोचा था.

दीदी की शादी के वक़्त महज सत्रह साल की नाजुक उम्र थी उसकी. दीदी की शादी में पहली बार साड़ी पहनी थी. कितना उत्साह था. जीजाजी के जूते चुराऊंगी. दस हज़ार से एक रुपये कम न लूंगी. उन्हें ख़ूब तंग करूंगी. जीजाजी उसकी हर शरारत पर मुस्कुराकर रह जाते. वह सिर्फ़ उसकी बहन के पति ही नहीं. नेहा की हर बात के हमराज़ थे. समझदार और सुलझे हुए दामाद को पाकर पूरा परिवार बहुत ख़ुश था. बहुत सारी ऐसी बातें जो दीदी को भी पता नहीं चल पाती थीं वह जीजाजी से डिस्कस करती थी. जीजाजी के उत्साहित करने पर ही उसने सिविल सर्विसेज़ की तैयारी करना शुरू की थी. नहीं तो मां के आगे तो वह भी दीदी की तरह मज़बूर हो जाती और आज वो भी दीदी की तरह किसी की घर-गृहस्थी देख रही होती.

□

दीदी पढ़ने में बहुत अच्छी थी. पर बाबा की अंतिम इच्छा का मान रखने के लिए. दीदी बलि का बकरा बनकर रह गयी और अचार-मुरब्बे और नये-नये पकवानों के अलावा आगे कुछ भी न सोच सकी.

याद है, उसे आज भी वह दिन. दीदी की कैंसर की रिपोर्ट आयी थी. कैंसर थर्ड स्टेज़ पर था, घर में कोहराम मच गया था. मां का रो-रोकर बुरा हाल था और दीदी दीवार का कोना पकड़े बुत खड़ी थी. नेहा को समझ में नहीं आ रहा था किस-किस को संभाले और क्या समझाए.

समझते सभी थे. पर झूठी दिलासा एक-दूसरे को देते रहे. प्रवीण जीजाजी का सुदर्शन चेहरा अचानक से बूढ़ा लगने लगा था. अपनी जीवन-संगिनी की दुर्दशा उनसे बर्दाश्त नहीं हो रही थी. कितने सुखी थे वे. राम-सीता जैसी जोड़ी थी उनकी. न जाने किसकी नज़र लग गयी थी उस ख़ुशहाल परिवार पर.

जीजाजी ने दीदी को बचाने के लिए हर संभव कोशिश की. मुंबई, मद्रास कहां-कहां नहीं दौड़े. किस-किसके आगे हाथ नहीं जोड़े. पर पत्थर का भगवान भी पत्थर हो चुका था. जीजाजी की आलीशान कोठी, रुपया-पैसा सब धरा का धरा रह गया और दीदी हमें रोता-बिलखता छोड़कर चली गयी. इन दिनों में उसने क्या-क्या देखा और महसूस किया था. वही जानती थी.

घर मेहमानों और रिश्तेदारों से भरा हुआ था. नन्ही परी मां के लिए बिलखते-बिलखते नेहा की गोदी में ही सो गयी थी. दीदी की चचिया सास कनखियों से नेहा को बार-बार घूर रही थीं.

'बेटा तुम कौन हो. बहुत देखा-देखा चेहरा लग रहा है.'

नेहा ने परी की तरफ़ इशारा करके कहा.

'मैं इसकी मासी हूं.'

चाचीजी के चेहरे पर एक रहस्यमयी मुस्कान आ गयी. उन्होंने सोती हुई परी के सर पर हाथ फेरते हुए बड़े व्यंग्यात्मक ढंग से कहा.

'हां भाई... परी के लिए तुम मा...सी हो... अब तो तुम ही इसकी.

नेहा ग़ुस्से से तिलमिला गयी. चाची के शब्द गले में अटक कर रह गये. वो परी को लेकर कमरे में चली गयी. ये पहली बार नहीं था. इन तेरह दिनों में हर आने-जानेवालों की निग़ाहों में उसने यही सवाल तैरते देखा था, कितना रोयी थी वो उस दिन.

'मां...! दीदी को गये चार दिन नहीं हुए और लोग जीजाजी की दूसरी शादी के बारे में भी सोचने लगे.'

वो मां के गोद में सर रखकर सिसकने लगी,

'ये दुनिया ऐसी ही है. जानती हो आज एक महिला आयी थी. शायद तुम्हारे जीजाजी के जाननेवालों में थी. मुझसे ही तुम्हारे जीजाजी के लिए अपनी तलाकशुदा बेटी के रिश्ते की बात कर रही थी.'

नेहा आश्चर्य से मां को देखती रह गयी.

'नेहा दुनिया ऐसी ही है. एक अच्छा जीवन जीने के लिए आलीशान मकान, नौकर-चाकर और रुपया-पैसा किसको नहीं चाहिए.'

नेहा का मन खिन्न हो गया, दीदी के सपनों का महल यूं आहिस्ता-आहिस्ता ढह रह था.

धीरे-धीरे सारे मेहमान चले गये. नेहा भी सामान पैक कर रही थी. तभी परी और गोलू ने आकर चौंका दिया.

'मासी आप जा रही हैं?'

दीदी के जाने के बाद दोनों बहुत अकेले पड़ गये थे.

'हां बेटा...! मेरी छुट्टियां ख़त्म हो गयी हैं. ऑफ़िस

भी जाना है न. तुम उदास क्यों हो. हम रोज़ वीडियो कॉल से बात करेंगे. अपना होमवर्क रोज़ करना. परी कल से तुम अपनी कत्थक की क्लास जॉइन करोगी और गोलू तुम भी अपनी कराटे की क्लास जाना शुरू करोगे.'

बच्चे चुपचाप सुनते रहे. दीदी के बच्चे बहुत समझदार और आत्मनिर्भर थे. पर फिर भी... बच्चे ही थे. बच्चे नेहा को छोड़कर चले गये. तभी मां कमरे में आ गयी.

'नेहा... सामान पैक हो गया.'

'हां मां... ऑफ़िस से बार-बार फ़ोन आ रहा. आप लोग कब निकल रहे?'

'तुम्हारे पापा और भैया कल सुबह निकलेंगे. मैं अभी कुछ दिन यहीं रहूंगी. बच्चे एकदम अकेले पड़ गये हैं.'

'हम्म...'

नेहा सर झुकाए मां की बात सुनती रही.

'नेहा तुझसे एक बात कहनी थी.'

'हां, मां बोलो. सुन रही हूं.'

मां झुंझला गयी.

'यहां मेरे पास बैठो.'

'क्या हुआ मां. ऐसी भी क्या बात है.'

नेहा के दिमाग़ में हज़ारों सवाल उठ रहे थे. मां ने नेहा का हाथ अपने हाथों में ले लिया.

'नेहा... तुमसे कुछ भी नहीं छुपा है. इस घर के हालात तुम भली भांति समझती हो. तुम्हारी दीदी के जाने के बाद हमारी ज़िम्मेदारी और भी बढ़ गयी है. तुम्हारी दीदी ने मरने से पहले मुझसे एक वायदा लिया था. वो चाहती थी कि उसके मरने के बाद तुम उसके बच्चों की ज़िम्मेदारी संभालो. तुम...तुम प्रवीणजी से शादी कर लो.'

नेहा छटपटा कर रह गयी.

'मां तुम ऐसा सोच भी कैसे सकती हो. जीजाजी के साथ मेरी... छि... मां तुम भी न.'

ग़ुस्से और वितृष्णा से नेहा का चेहरा लाल हो गया.

'नेहा समझने की कोशिश करो. आख़िर तुम्हारी भी शादी करनी ही है. देखा-भाला परिवार है. बच्चों को मां मिल जाएगी. वैसे भी एक लड़की को क्या चाहिए आलीशान घर, नौकर-चाकर, रुपया-पैसा... तुम्हारे पापा की भी यही इच्छा है.'

नेहा आश्चर्य से मां को देखती रह गयी.

'तुमने जीजा से भी एक बार पूछा है?'

'पूछना क्या है उनके माता-पिता तो हैं नहीं चाचा-चाची से बात हो गयी है. उन्हें भी ये रिश्ता मंजूर है.'

'रिश्ता...?'

नेहा को सारा घटनाक्रम समझ में आ गया.

'मां... मैं तुमसे इस बात की उम्मीद नहीं कर रही थी. तुम भी...छि... दीदी की चिता की आग अभी ठंडी भी नहीं हुई और तुम...?'

मां का चेहरा गंभीर हो गया.

'हो सकता है आज तुम्हें मेरी बातें अच्छी न लगें. पर तुम्हारी दीदी के जाने के बाद प्रवीणजी और उनके बच्चों की ज़िम्मेदारी भी मुझ पर है. तुम सोच-विचार कर जल्द मुझे जवाब दे दो. कहते हैं मरनेवाले की अंतिम इच्छा न पूरी की जाए तो उसकी आत्मा को कभी शांति नहीं मिलती.'

अंतिम वाक्य कहते वक़्त मां ने नेहा को अजीब-सी निग़ाहों से देखा. पता नहीं... उन निग़ाहों में ऐसा क्या था. नेहा उन आंखों में तैर रहे हज़ारों सवालों के तीर झेल नहीं पायी और मुंह घुमा लिया.

एक हफ़्ते में मां ने पचासों बार फ़ोन कर दिया था. हर बार एक ही सवाल और नेहा एक ही जवाब देती.

'मां मुझे सोचने का वक़्त दो...'

नेहा हर बार एक ही बात पर आकर अटक जाती. सबको मरी हुई दीदी की अंतिम इच्छा की चिंता है. पर किसी ने एक बार, हां सिर्फ़ एक बार उससे पूछा कि उसकी इच्छा क्या है. मरनेवाला तो मरकर चला गया. पर लोग उसे ज़िंदा लाश बनाने पर क्यों तुले हैं.

शनिवार की रात थी. इन दिनों वो बहुत व्यस्त रही, शारीरिक रूप से भी और मानसिक रूप से भी. सप्ताह भर की दौड़-भाग से शरीर थक कर चूर हो गया था. नेहा हाथ में कॉफी का मग लिये छत पर आ गयी. कितने दिनों बाद. हां कितने दिनों बाद वो छत पर सुकून के चंद पलों की तलाश में आकर बैठी थी.

आसमान में चांद बादलों से लुका-छिपी कर रहा था. वो सोचने लगी बादलों और तारों के बीच रहकर भी चांद कितना अकेला है. वो भी तो आज कितनी अकेली थी. कोई उसे समझने को तैयार नहीं. किसी ने एक बार भी उसके बारे में नहीं सोचा. सब अपनी ज़िम्मेदारियों से मुक्त होना चाहते हैं और वो... वो आख़िर क्या चाहती है.

नेहा सोचती रही... उसकी आंखों के सामने जीजाजी का थका हुआ चेहरा... परी और गोलू का मासूम चेहरा...

लघुकथा

देवता

दीपाली ठाकुर

'रुक जाओ शशी,रु...क जा ऽऽऽ आ ऽऽऽ' मेंटल हॉस्पिटल के एक कमरे से निकलती इस आवाज़ से सारा हॉस्पिटल गूंज उठता था. चार साल हो गए यादों से घिरे महेश जी अकेले ही, कभी हंसते हैं, कभी रोते हैं और कभी, चिल्ला पड़ते हैं 'रुक जाओ शशी ' जिन शब्दों के साथ वे जा खड़े होते हैं अतीत के उस पल में शशि आख़िरी सांसें गिन रही है, 'आप मेरा सर अपनी गोद पर रख लो न.'

'हां ... हां ' कहते उन्होंने शशि के सर को अपनी गोद का तकिया दे दिया.

'अब चैन की नींद आएगी,मैं कितनी भागवान हूं, पर आप...? मुझ बांझ ने आपको कोई सुख न दिया. फिर भी आपने मेरा साथ न छोड़ा हे प्रभु अगले सात जन्मों में इन्हीं का साथ देना...कहती-कहती रुक गयी थी शशि ना... ना मेरे परमेश्वर ये मैंने क्या कह दिया अपने स्वार्थ में तुम्हारा सुख तो भूल ही गयी मैं मुई. और बदा ही हो तो एक कृपा ज़रूर करना ... मुझ चाकरी के आंचल में कम से कम एक फूल तो फेंक देना जो मैं अपने देवता को अर्पण कर सकूं अबकी, बांझ न बनाना बांझ न बनाना.'...बुदबुदाते शशि सो गयी.

महेश जी ने बड़ी हिम्मत की मगर शब्द मुंह से न निकल पाए, वो कह देना चाहते थे कि 'नहीं शशि तुम बांझ नहीं, कमी मुझमें थी ये जानते हुए भी मैं ये स्वीकार न सका और अपनी कमी छुपा, तुम्हारा साथ देने का स्वांग रचता रहा मैं तुम्हें छोड़ता भी, तो भी तो ... एक स्वार्थी और कायर आदमी, तुम्हारा देवता बना रहा.'

सहसा ही एक गहरी निःश्वास के साथ शशि ने अपनी दोनों आंखें खोलीं और दीवार पर लटकी बाल कृष्ण की तस्वीर पर अटक गयी. सदा सदा के लिए और जैसे ही शशि के सर्द हाथों को उन्होंने छुआ चिल्ला पड़े, 'रुक जाओ शशि'. मगर शशि तो बांझ का बोझ ढोये अनंत यात्रा पर चल पड़ी थी.

बी-२/३८,'ठाकुर विला' रोहिनीपुरम, लोकमान्य सोसायटी, रायपुर-४९२००१ (छ. ग.)
मो. ८०८५२०६२६९ **E mail- deepalee.thakur@gmail.com**

तो कभी मां का गंभीर चेहरा उभरकर आ जाता. नेहा ने आंखें मूंद ली. आख़िर एक लड़की को क्या चाहिए अपनी ज़िंदगी से...एक ख़ुशहाल परिवार, रुपया-पैसा, घर बस...

बस...बस क्या यही चाहिए था उसे अपनी ज़िंदगी से. आज अगर वो मां की बात मानकर शादी कर ले. तो उसे इस रिश्ते से क्या मिलेगा दीदी की परछाई होने का दर्जा. दूसरी पत्नी... दूसरी मां...नेहा मन ही मन मुस्कुराने लगी... दूसरी मां नहीं... सौतेली मां!

लोगों के ताने. समाज का हर क़दम पर तुलना. बड़ी बहन ज़्यादा सुंदर थी. दूसरी तो ऐसी ही आएगी. बच्चे पैदा करने की क्या ज़रूरत है पहली से दो पहले ही हैं. ज़िंदगी गुज़र जाएगी एक अच्छी मां बनने और सिद्ध करने में. उसके बाद भी इसकी कोई गारंटी नहीं कि वो ये सिद्ध कर भी पाएगी या नहीं. प्रवीण की निग़ाहें हर चीज़ में, हर रंग में, हर त्योहार में, हर स्वाद में दीदी को ढूंढ़ेंगी. तिनका-तिनका जोड़कर अरमानों से सजाया हुए दीदी के उस घर में एक फूलदान सजाने में भी उसके हाथ कांपेंगे. हर पार्टी — हर उत्सव में लोगों की सवालिया निग़ाहें उसे तार-तार करेंगी. देखने में तो ठीक लगती है फिर ऐसी क्या गरज़ पड़ी थी दो बच्चों के बाप से शादी करने की. अकेली आयी है या बच्चे भी.

नेहा ने घबराकर आंखें खोल दीं और आसमान में तारों के बीच दीदी को ढूंढ़ने लगी. दीदी मुझे माफ़ कर देना शायद तुम्हें लगे मैं स्वार्थी हूं पर. मैं इतनी मज़बूत नहीं कि जीवन भर लोगों के सवालों का जवाब दे सकूं. पर मैं आज तुमसे ये वायदा करती हूं कि एक मासी के तौर पर हमेशा तुम्हारे बच्चों के साथ खड़ी रहूंगी. हफ़्तों से घुमड़ते सवालों का मानो उसे जवाब मिल गया था. नेहा मां को फ़ोन करने के लिए छत से नीचे उतर गयी.

लालबाग कॉलोनी, छोटी बसही बजाज स्कूल के बगल में, मिर्जापुर-२३१००१ (उ. प्र.)
मो. : ९४१५४७९७१६
e-mail : ranjana1mzp@gmail.com

चल मेरे चेतक

■ सदाशिव कौतुक

जन्म : १ जनवरी १९४८, गोगावा (म. प्र.)
– अनेक विधाओं में ५५ कृतियां
सम्मान : देश की प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा अखिल भारतीय ४२ सम्मान एवं पुरस्कार
संपादन : इंदौर के ग्यारह कवि, निमाड़ की माटी मालवा की छांव, उबाल एवं चार अंगुल- कविता संग्रह.
विशेष : महाराष्ट्र में कक्षा १०वीं के पाठ्यक्रम में पर्यावरण पर एक कविता 'मत काटो मेरे हाथ' २००७ से 'अंतर्राष्टीय हिंदी गौरव सम्मान' मॉरिशस-२०१९.
रुचि : तबला वादन
प्रबंध संपादक : पत्रिका 'समावर्तन' उज्जैन, १. कई संस्थाओं से संबद्धता; २. आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से प्रसारण.
मानद सदस्य : श्री मध्य भारत हिंदी साहित्य समिती, इंदौर एवं प्रबंधकारिणी सदस्य. पत्रिका वीणा प्यार-प्रसार संयोजक (म. प्र.)
यात्राएं : नेपाल, दुबई, श्रीलंका, सिंगापुर, मलेशिया एवं मॉरिशस.

"बाबूजी! मैं वैष्णोदेवी चलने को तैयार हूं."

पहले तो उसकी लंबी दाढ़ी देखकर सतीश बाबू सोचते रहे कि पता नहीं कैसा व्यक्ति है, दुबला-पतला भी है. इतनी ऊंची चढ़ाई चढ़ भी पायेगा कि नहीं.

इतने में फिर उसने गिड़गिड़ाते हुए पूछा — "बाबूजी मैं चलूं क्या. मैं आपके बेटे को कंधे से नीचे नहीं उतरने दूंगा. बाबूजी पैसा भी अधिक नहीं मांग रहा हूं. दूसरे पिट्ठू तो ८-९ सौ से कम नहीं लेते. मुझे छः सौ ही दे देना. मेरा काम इतने में ही चल जायेगा. बाबूजी मज़बूरी का मारा हूं. मेहनत के ही मांग रहा हूं. कभी काम मिलता है, कभी नहीं मिलता. बंधी नौकरी तो है नहीं. जो भी मिल जाता है उसमें गुज़ारा करना पड़ता है. क्या करें दूसरा कोई सहारा भी तो है नहीं. बाबूजी आपके बेटे को पीठ पर लाद कर फूल जैसा संभालकर ले चलूंगा. आपके साथ-साथ ही चलूंगा. मैं भी बाल-बच्चेदार हूं. एडवांस भी कुछ नहीं लूंगा. वैष्णोदेवी के दरबार से वापस यहीं आपको छोड़ दूंगा तभी पूरे पैसे लूंगा. बाबूजी पीठ पर ज़िंदगी ढोता रहता हूं. इसी मेहनत-मजूरी से घर चलाता हूं."

पिट्ठू की बोली में लाचारी पाकर सतीश बाबू द्रवित हो गये. उसकी अंतर्वेदना सुनकर उन्होंने पूरे छः सौ में ही उसे वैष्णोदेवी मंदिर तक ले जाने और लाने की स्वीकृति दे दी.

"आओ मुन्ना... आओ हम आपका घोड़ा बनेंगे आप हमारी पीठ पर विराजमान होकर हमें टिक-टिक करके हांकना. हम तुम्हें बर्फ के पहाड़ दिखाएंगे, गहरी खाइयां दिखाएंगे, पहाड़ों पर वृक्ष दिखाएंगे, नदियां और झरने दिखाएंगे, चहचहाचते पक्षी दिखाएंगे, फिर माताजी के दर्शन कराएंगे."

सात वर्षीय मुन्ना पिट्ठू की दाढ़ी, पुराने कपड़े और चप्पलें देखकर विस्मय से सोच रहा था कि यह तो उसके घर के नौकर से भी बदतर है.

वह उसकी पीठ पर बैठे या नहीं, वह बड़े असमंजस में था. परंतु पिता और माता की आज्ञा का पालन करना ज़रूरी था. मन मानकर आख़िर वह पिट्टू के कंधे बैठ गया. सबने पानी पिया और रवाना हो गये, वैष्णोदेवी मंदिर की चढ़ाई चढ़ने के लिए.

''पिट्टू ने स्वेटर को उतारकर अपनी कमर से बांध लिया था. रोटी की पोटली स्वेटर की जेब में रख ली और एक हाथ में पानी की बोतल. स्वेटर को कमर पर लपेटा हुआ देखकर, मुन्ना ने पिट्टू से पूछा — ''अंकल आपने इतनी ठंड होने के बावजूद सिर का टोपा उतार कर स्वेटर कमर से क्यों बांध लिया? क्या आपको ठंड नहीं लग रही?''

''नहीं मुन्ना! हम लोग पहाड़ों की ठंड सहन करने के आदी हो गये हैं. हमारी जाड़े से दोस्ती हो गयी है, पहाड़ों से दोस्ती हो गयी है और रास्ते की पगडंडियों से रिश्ता हो गया है. हमारा जीवन–यापन का साधन ही यह यात्रा है. हम आप लोगों को दर्शन कराने नहीं ले जायें तो हमारा परिवार भूखों मर जाये. हम ज़िंदा ही नहीं रहें और फिर आपको बैठाकर ले जाने से शरीर में गर्मी यों ही आ जायेगी और ठंड अपने आप दूर भाग जायेगी.''

मुन्ना ने फिर पूछा — ''क्या आपके बच्चे भी हैं?''

''हां, मेरी एक बेटी और बेटा भी है. उनकी मां है तभी तो मुझे यहां पिट्टू का काम करना पड़ता है.''

पिट्टू के सामने घर का पूरा दृश्य आ गया था. उसकी जवान बेटी और छः-सात साल का बेटा आंखों में तैरने लगे थे. छोटा-सा कच्चा मकान भी दिखने लगा था. फिर मुन्ना ने एक प्रश्न पूछा —

''अंकल! फिर तो तुम्हारे बच्चे स्कूल भी जाते होंगे?''

''नहीं मुन्ना! काहे का स्कूल इन पहाड़ियों में अकेले स्कूल कहां भेजें? इधर ज़िंदगी जीना बत्तीस दांतों के बीच बचकर जीभ जैसा रहना पड़ता है. इसलिए घर पर ही रहते हैं. पास ही उस खाई के पार कच्चा मकान है. एक-दो भेड़ें पाल रखी हैं. उनकी देखभाल करते रहते हैं और मैं वैष्णोदेवी के दरबार में मज़दूरी मांगने आ जाता हूं. कभी काम मिल जाता है कभी नहीं भी. बस ऐसी ही ज़िंदगी कट जायेगी.''

मुन्ना ने जेब में हाथ डालकर चार टॉफ़ी निकालीं और पिट्टू से कहा — ''यह लो अंकल ये टॉफ़ी अपने बच्चों को मेरी तरफ़ से देना और कहना कि किसी स्कूल में पढ़ने जायें क्योंकि यह उम्र पढ़ाई की होती है.''

तीन किलोमीटर का रास्ता तय हो गया था. सड़क किनारे एक चाय-नाश्ते की दुकान पर सतीश बाबू रुके और नाश्ता-पानी-चाय वग़ैरह ली. पिट्टू पास ही बने एक माइल स्टोन पर बैठ गया. उसने भी नाश्ता चाय लिया. पंद्रह मिनिट विश्राम करके फिर यात्रा आरंभ कर दी.

कई दर्शनार्थी आगे-पीछे चल रहे थे. जय माता दी-जय माता दी का उद्घोष गूंज रहा था. कुछ बुज़ुर्ग दर्शनार्थी डोली में बैठकर जा रहे थे, कुछ घोड़ा-खच्चर पर बैठकर मां के दर्शन करने जा रहे थे. वातावरण भक्तिमय हो गया था. किसी के सिर पर जय माता जी के दुपट्टे बंधे हुए थे, किसी ने कमर पर बांध रखे थे, किसी ने हाथों पर. किसी ने हाथों में भगुआ झंडी थाम रखी थी. जवान दर्शनार्थी बेधड़क तेज़ी से चल रहे थे. कुछ महिला, पुरुष लाठी के सहारे चल रहे थे तो कुछ एक दूसरे का हाथ थामे चल रहे थे. कहीं कुछ दूरी पर भजन मंडलियां भी चल रही थीं. ढोलक-झांझ, मजीरों और खंजरी से ताल मिलाकर भजन गाते हुए जा रहे थे. भजन गाते हुए जाने से कठिन चढ़ाई का मार्ग काफ़ी सरल हो गया था. सारे दर्शनार्थी भक्तिरस में डूबकर चले जा रहे थे. भक्ति रस में डूब जाने से रास्ता बहुत सरल हो गया था. मां के दर्शन में मन लग जाने के कारण चढ़ाई आसान लग रही थी. सबके मन में आस्था का सैलाब था, मन में कुछ पा लेने की आशा थी और एक आस्था के सहारे-सहारे सब चले जा रहे थे.

सतीश बाबू और उनकी पत्नी आधी दूरी तय करने के बाद थकान महसूस कर रहे थे इसलिए थोड़ी दूर चलकर पांच-दस मिनट का विश्राम कर लेते थे. पिट्टू भी उनके साथ-साथ चल रहा था. यों तो पिट्टू अच्छी तेज़ चाल से चल लेते हैं परंतु सतीश बाबू ने पिट्टू से साथ-साथ चलने का बोल रखा था इसलिए पिट्टू भी उनकी चाल से ही चल रहा था. वैसे सतीश बाबू चाहते तो घोड़ा या डोली किराये पर ले सकते थे लेकिन पुत्र जन्म की मन्नत पूरी उन्हें करनी थी कि पुत्र जन्म के बाद वे मां वैष्णोदेवी के दर्शन करने पैदल ही जायेंगे. उनकी इस मन्नत के कारण वे धीरे-धीरे दर्शन करने के लिए चढ़ाई चढ़ रहे थे. यों भी रास्ते का वातावरण इतना अच्छा था कि चढ़ाई का उन्हें पता ही नहीं

चल पा रहा था. आस्था और दृढ़ संकल्प मनुष्य को मंज़िल तक पहुंचाने के कठिन काम को सरलतम कर देते हैं.

पिट्ठू, मुन्ना का मनोरंजन भी करता जा रहा था. कभी उसे हंसाता कभी कहानी सुनाता, कभी मां वैष्णोदेवी की कृपा के या वरदान के क़िस्से सुनाने लगता. क़िस्से-कहानी सुनकर बालमन देवी मां के पास पहुंचने को अधीर होने लगा था. कब मंदिर पहुंचें और कब मां के दर्शन करें. अब यात्री धीरे-धीरे दर्शन के लिए व्याकुल होने लगे. तीन-चार किलोमीटर का रास्ता तय करना बचा था. दूर मंदिर का ध्वज दिखायी दे रहा था. अब वह ध्वज भक्तों को विश्वास दिला रहा था कि वे मां के दरबार में शीघ्र प्रवेश करने वाले हैं.

पिट्ठू ने मुन्ना से कहा — ''मुन्ना तुम मुझे चेतक कहो तो मुझमें चेतक घोड़े की तरह ताकत आ जाये. चेतक के बारे में तुमने क़िताबों में पढ़ा होगा. चेतक महाराणा प्रताप का वीर, साहसी और वफ़ादार घोड़ा था. महाराणा प्रताप जैसे ही उसकी पीठ पर बैठते कि चेतक हवा से बात करने लगता था. महाराणा प्रताप को चेतक पर युद्ध में पूरा भरोसा होता था. चेतक का नाम तो इतिहास में आज भी लिया जाता रहा है. मेरी सवारी मुझे चेतक कहती है, तो मुझे बहुत ख़ुशी होती है.''

मुन्ना ने कहना शुरू किया — ''चल चेतक, जल्दी चल, मां ने दर्शन करने बुलाया है, चल चेतक जल्दी चल.''

पिट्ठू चेतक का नाम सुनकर बहुत तेज़ी से चलने लगा था. चेतक का नाम सुनकर उसमें एक अलग तरह की चेतना आ जाती थी. उसे लगा कि शायद उसका चेतक उसके साथ होता. पिट्ठू चेतक की याद में खोकर आगे क़दम बढ़ाये चला जा रहा था. तेज़ चलने से मुन्ना बहुत ख़ुश हुआ और उसने एक टॉफी पिट्ठू को देते हुए कहा — लो चेतक तुम्हें पानी की प्यास लगी होगी, घबराहट हो रही होगी, इसलिए यह टॉफी चूस लो, अच्छा लगेगा. पिट्ठू ने मुन्ना से टॉफी ली और चूसने लगा और बोला — ''वाह मुन्ना! यह तो बड़ी अच्छी टॉफी है हमारे इधर ऐसी टॉफी नहीं मिलती है, मज़ा आ गया. वाह मुन्ना तुम तो बहुत अच्छे बच्चे हो.''

कहते हुए पिट्ठू ने मुन्ना को थोड़ा उचकाकर दूसरे कंधे पर बैठा लिया था. पिट्ठू को जब कभी बच्चों की सवारी मिल जाती थी तो बच्चों के साथ पिट्ठू भी बच्चा हो जाता था. बातें करते हुए उसका रास्ता भी आसानी से तय हो जाता था. यह यात्रा उसके जीवन-यापन का साधन होने के साथ मनोरंजन का साधन भी थी. यही उसकी ज़िंदगी थी यही उसकी ख़ुशी थी.

''अंकल तुम हमें अपने घर ले चलोगे?'' मुन्ना ने पूछा था.

''हां ज़रूर ले चलेंगे हमारी ख़ुशक़िस्मती होगी कि आप हमारी झोपड़ी पर चलेंगे. परंतु हमारे यहां बैठने के लिए कुर्सी-सोफ़ा नहीं मिलेगा. हम बैठने के लिए आपको खटिया देंगे. चलेगा?''

''क्यों क्या आपका मकान पक्का नहीं है?'' मुन्ना ने विस्मय से पूछा.

''नहीं मुन्ना राजा! हम ग़रीब लोग हैं इसलिए तो तुम्हें हम मंदिर तक ले जा रहे हैं. रास्ते में चल रहे भंडारों पर खाना खा लेते हैं और पैसा बचाकर घर पर ले जाते हैं, जिससे हमारा परिवार चलता है. काम भी सीज़न में ही मिलता है. ग़ैर सीज़न काम नहीं मिलने के कारण कुछ पैसा बचा लेते हैं फिर बचत के पैसे से ग़ैर सीज़न में अपनी जीविका चला लेते हैं. अभी इस कोरोना महामारी के दौरान तो भूखों मरने की नौबत आ गयी थी. जैसे-तैसे पेट भरा तो आज ज़िंदा हैं वरना कभी के मर गये होते. ख़ैर, छोड़ो मुन्ना राजा. हमारी दुनिया आप लोगों की दुनिया से बहुत अलग दुनिया है. हमारा जीना क्या और मरना क्या? सब मां वैष्णोदेवी के सहारे हैं.''

पिट्ठू की बातें, चाल-ढाल सुनकर मुन्ना की मां ने धीरे

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

- संपादक

से सतीश बाबू से कहा — ''मुझे ऐसा लगता है हमें ऐसी आवाज़ और लाचारगी भरी भाषा कहीं सुनी लगती है.''

सतीश बाबू ने हंसकर टालते हुए कहा — ''ख़ैर जाने दीजिए. दुनिया बहुत बड़ी है ज़्यादा मत सोचो. दुनिया में दुखी बहुत मिल जायेंगे. हम मंदिर के समीप आ चुके हैं माताजी में ध्यान लगाओ और कृपा समझो कि इतनी ऊंची चढ़ाई चढ़ कर हम मां के दरबार में आ गये. जय माता दी, बोलो जय माता दी.''

दर्शनार्थियों की काफ़ी भीड़ लगी हुई थी. कतार लंबी थी. पूरा वातावरण भक्तिमय हो गया था. जय जय कार के नारे गूंज रहे थे. ढोल-ढमाकों की आवाज़ से एक अलग तरह का भक्तिमय वातावरण हो गया था. यहां भी पुलिस का अच्छा इंतज़ाम था. सुरक्षा का पूरा ध्यान रखा गया था. रास्ते में भी जगह-जगह पुलिस के जवान लगे हुए थे. सतीश बाबू और उनका परिवार भी जय-जयकार में लग कर भक्तिमय वातावरण में घुल गये थे. पिट्टू ने मुन्ना को थोड़ा दूर पहले उतारकर सतीश बाबू के सुपुर्द कर दिया था और सौ रुपये मांग लिये थे. पिट्टू ने चाय पी और एक वृक्ष की छांव में ज़मीन पर स्वेटर का तकिया बनाकर लेट गया था.

दो-तीन घंटे बाद सतीश बाबू दर्शन करके पत्नी और मुन्ना के साथ उसी वृक्ष के नीचे आ कर शांति से सीमेंट की बनी कुर्सियों पर बैठकर विश्राम करने लगे थे. मां के दर्शन करने के बाद उन्हें शांति मिली और थोड़ी देर तक मंदिर और मंदिर के आसपास आकाश को छूते हुए पहाड़ों और वृक्षों को देख रहे थे. दूर तक हल्का कोहरा दिखायी दे रहा था. प्रकृति का विहंगम दृश्य मन को मोह रहा था. पक्षी चहचहा रहे थे. हर दर्शनार्थी के मन में उल्लास प्रकट हो रहा था. दर्शन करके धीरे-धीरे टोलियां प्रस्थान करने लगी थीं.

सतीश बाबू ने भी दर्शन करने के बाद पिट्टू से वापस लौटने को कहा और पिट्टू ने मुन्ना से कहा — ''चलो मुन्ना राजा आ जाओ अपने चेतक के कंधे पर बैठकर अभी पहुंचते हैं नीचे ठीये पर.''

पिट्टू नीचे बैठ गया और मुन्ना को सीमेंट की बेंच पर से उठाकर अपने कंधे पर सवार कर लिया. रवाना होने के पहले सब ने माताजी का जय-जयकार किया. प्रसाद आदि का झोला टांगा, लाठी हाथ में ली और चल दिया नीचे की ओर. जय माता दी... जय माता दी.. जय माता दी, बोलो वैष्णोदेवी की जय.

पिट्टू ने मुन्ना का मनोरंजन करना शुरू कर दिया और बोला — ''बोलो मुन्ना माताजी के दर्शन करके कैसा लगा?''

''बहुत अच्छा लगा. मज़ा आ गया. मैंने मम्मी से बोलकर माताजी की मूर्ति, शंख और मालाएं ख़रीदीं. मैं अपने सारे दोस्तों को भी बताऊंगा और उन्हें भी माताजी के दर्शन करने को कहूंगा. ओह! चेतक धीरे चलो मैं गिर नहीं जाऊं.'' संभलते हुए मुन्ना ने कहा.

नहीं-नहीं मुन्ना हमारी देह में जान है तब तक तो तुम्हारा बाल भी बांका नहीं होने देंगे. मुन्ना राजा क्यों चिंता करते हो. अब आपका चेतक ढलान होने के कारण धीरे-धीरे उतरेगा. आप बेफ़िक्र होकर बैठे रहिए. आप हमें एक टॉफी और खिलाना. बड़ी अच्छी मज़ेदार टॉफी खिलाकर आपने हमें लालची बना दिया है.''

मुन्ना ने एक टॉफी पिट्टू को फिर दी और पिट्टू ने धन्यवाद कहकर टॉफी मुंह में दबायी और चूसने लगा. टॉफी चूसते हुए पिट्टू फिर बोला —

''मुन्ना जानते हो मैंने अपना नाम चेतक क्यों रखा?''

''नहीं.''

''चेतक मेरे घोड़े का नाम था. बड़ा प्यारा घोड़ा था. मेरे तांगे को खींचता था. उसके सहारे मेरे घर का ख़र्च चलता था. घर की गाड़ी बड़ी अच्छी चल रही थी.''

इतना सुनकर सतीश बाबू के कान खड़े हो गये. सतीश बाबू अपने को रोक नहीं पाये और बोले, ''अरे तुम वही हो रमजान तांगेवाले कश्मीर में तांगा चलाते थे. अरे फिर तो हम तुम्हारे तांगे पर बैठ चुके हैं, तुमने ही तो हमें स्टेशन के होटल से डल झील तक ले जाकर छोड़ा था. रास्ते में कश्मीर की वादियों और बर्फीली हवाओं के नज़ारे दिखाए थे. ख़रीदी के लिए मार्केट भी ले गये थे. उस समय तो तुम बड़े स्मार्ट थे. यह क्या हाल बना रखा है. कपड़े भी... और इतनी लंबी दाढ़ी. तुम्हारी बातों के लहज़े से कुछ लग तो रहा था कि यह आवाज़ कभी सुनी है पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया. ख़ैर!''

''तुम यहां वैष्णोदेवी कैसे आ गये और वह तुम्हारा तांगा-घोड़ा कहां है और तुमने यह क्या हाल बना रखा है?''

सतीश बाबू की बात सुनकर पिट्टू द्रवित हो गया.

उसकी आंखों के सामने चार वर्ष पूर्व का वह मंजर खड़ा हो गया. वह रुंधे हुए गले से बोला —

''बाबूजी मेरी बीती सुनकर आपकी रुह कांप जायेगी. एक दिन सुबह की नमाज़ पढ़कर अपना तांगा लेकर सवारी के इंतज़ार में खड़ा हुआ था. दो औरतें बुरका पहनकर आयीं और तांगे पर बैठ गयीं. बोली तांगा बढ़ाओ, कहां जाना है आगे बताते हैं. मैंने तांगे को आगे बढ़ाया. परंतु मेरे घोड़े चेतक ने मुझे न चलने का संकेत भी दिया पर मैंने उसके पुट्ठे पर छड़ी जमा दी तो वह मेरी आज्ञा का पालन करने लगा. अनमने मन से आगे बढ़े जा रहा था और मैं उसकी मूक भाषा समझ नहीं पा रहा था. चार किलोमीटर पहुंचा था कि सामने से मिलेट्री के और पुलिस के जवानों ने हमारे तांगे को घेर लिया. बाबूजी मैं तो हक्का-बक्का रह गया. बुरके में वे औरतें नहीं दो आतंकवादी थे. दोनों ओर से गोलियां चलने लगीं, मैं तो मेरी बैठक पर लेट गया परंतु मेरा चेतक कहां जाता वह जुता हुआ था. मैं उसे खोल भी नहीं सकता था. पर पुलिस देखकर दोनों आतंकियों ने मुझे धौंस देते हुए कहा कि यदि मैं तांगे को तेज़ी से नहीं दौड़ाऊंगा तो वे मुझे गोली मार देंगे और मेरी बेटी को उठा ले जायेंगे. मेरी तो घिग्घी बंध गयी थी. मैंने ख़ुदा को याद किया और सब उस अल्लाह मियां पर छोड़ दिया.

जैसे ही मेरे प्यारे चेतक को गोली लगी वह हिनहिनाकर गिर गया. उसके गिरने से तांगा रुक गया और दोनों आतंकी भाग खड़े हुए. पुलिस उनके पीछे दौड़ी और मैं चेतक की आड़ में बच गया. चेतक ने अपनी जान देकर मेरी जान बचा ली. पुलिस की गोली से दोनों आतंकी मारे गये और मुझे पुलिस ने पकड़ लिया. मेरे बारे में बहुत तपतीश की परंतु मेरा रेकॉर्ड अच्छा था. कुछ लोगों ने मेरी सिफ़ारिश की और मैं छूट गया. तांगे से कमाने का मेरा साधन ख़त्म हो गया. तांगा थाने में जमा हो गया और चेतक तो मर ही गया था. पेट कैसे पालता. मैंने वह बस्ती छोड़ दी. जहां मैं रहता था और वैष्णोदेवी की शरण में आ गया. कोई दूसरा हुनर आता नहीं था. एक रिश्तेदार के आग्रह पर मैं इधर आ गया और पिट्ठू बनकर काम करने लगा. क्या करें बाबूजी जीना है तब तक पेट का भाड़ा तो चुकाना पड़ेगा?''

वह चेतक को याद करते हुए रोने लगा था. वह चेतक से बिछोह को कभी भूल नहीं सकता था. चेतक ने उसकी जान जो बचायी थी. फिर रुंधे कंठ से बोला — ''बाबूजी! चेतक कहीं गया नहीं वह मेरे दिल में बसता है अब मैं स्वयं चेतक हूं. इसलिए अपनी सवारी को कहता हूं कि वह मुझे चेतक कहें. जब सवारी मुझे चेतक कहती है, तो मुझमें मेरा चेतक आ बसता है और मैं उसकी याद में उसके जैसा चलने लगता हूं.''

पिट्ठू की दास्तान सुनकर सतीश बाबू और उनकी पत्नी बहुत द्रवित थे. सभी नीचे आ गये थे, यात्रा पूरी हो गयी थी. सतीश बाबू ने नया पैंट और शर्ट पिट्ठू को दिया और छः सौ रुपये मजदूरी के बजाय एक हजार रुपये दिये और पछताते रहे कि उन्होंने पिट्ठू से मंदिर जाने के लिए मोल भाव क्यों किया?

श्रमफल, १२५२०, सुदामा नगर,
इंदौर-४५२००९ (म. प्र.)
मो. : ९८९३०३४१४९
ई-मेल : sadashivkautuk01@gmail.com

ग़ज़ल

सतपाल 'स्नेही'

मेरे साथ हुआ कुछ यूं गड़बड़ झाला था,
कड़वे को ग़लती से कड़वा कह डाला था.

दुखी दिखना आदत-सी हो आयी वरना,
अपने हर सू ही सुक्खों का उजियाला था.

मुझको जितने यार मिले मुझसे बेहतर थे,
किसी-किसी का ही दिल थोड़ा-सा काला था.

पतझर ओढ़-पहन कर पतझर होकर समझा,
मेरे दिल का मौसम कितना हरियाला था.

मन से दरपन देखा है तो महसूसा है,
जैसे मैं इनसान नहीं बस घोटाला था.

इतना हुआ परेशां इक दिन मैं जीने से,
बोला ख़ुद से जन्मा ही क्यूं मैं साला था.

३६२, गली नं.-८, विवेकानन्द नगर,
बहादुरगढ़-१२४५०७.(हरियाणा)
मो. : ९४१६५३५६९६
e-mail : satpalsnehii@gmail.com

गीत

स्वीकारेगी लहर संगमन

✍ श्रीमती मधु प्रसाद

आगंतुक सुख के सम्मुख मैं
करूं पीर का कैसे गायन,
क्षण भर का आकर्षण होगा
फिर अनुरागी अंतर निर्जन.

पाकठ होकर भ्रमण कर रहा
सूरज के सम्मुख कैसे तम,
जाने कैसा पाख चल रहा
अंबर की लीलाएं संभ्रम.
अवमानित-सी खिली कुमुदिनी
हरसिंगार भी मौन दीखता,
सुर्ख़ाबी स्वप्न हांफ रहे हैं
कौन चांदनी देख रीझता,
देख स्वयं की छवि दरपन में
निशिकर का गहराया चिंतन.

आंसू से या तुहिन अभिसिंचित
पृष्ठ भीगता प्रेम कथा का,
पूर्ण विराम लगा उड़ान पर
आमुख कलश भरा व्यथा का,
डोरी में सांसों के उलझी
एकांती लय की परिभाषा.
पथ में इतने कांटे बिखरे
हुई तिरोहित सुमुखी आशा,
उपसंहार कितना रेतीला
मनोल्लास रहित लोकार्पण.

ठगने आए प्रेमिल कल्पन
मिलन मंत्र के फेरे आकुल.
आकांक्षा के कड़ुए तेवर
पलकें गिरतीं उठतीं ढुलमुल
साक्ष्य बनी है अंतःसलिला,
देहरहितसितआलिंगन की
जोगी मन के दृढ़ निश्चय में
शतधा श्रद्धा संप्रेषण की
सप्तक हो या हो सप्त शती
मूल्यांकन करता संवेदन.
आराधन अर्चन करते हैं
अग्नि ताप सम्मुख बीते क्षण
हल्दी मेंहदी गहन गहनतर
शेष सभी व्यर्थ अनुलेपन.
पार खड़ी हूं मैं जीवन के
और तुम्हारा पार नहीं है,
कैसे साथ निभेगा प्रियतम
सहयोगी संसार नहीं है,
पाल खोल दो मुक्ति धाम के
स्वीकारेगी लहर संगमन.

२९, गोकुल धाम सोसायटी,
ऑफ़बीआरटी एस सारथी बस स्टैंड,
चांदखेड़ा, अहमदाबाद-३८२४२४.
मो. ९५५८४२४७८८

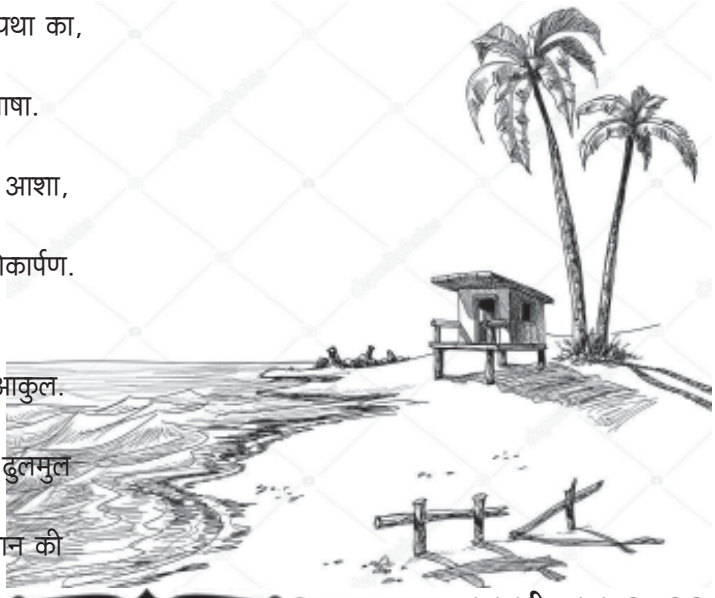

तितलियां और तितलियां

■ अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन'

१९ दिसंबर १९५८

ग्राम-मनियर, जिला-बलिया (उ. प्र.)

शिक्षा : बी.एससी., एल. एल. बी. (इलाहबाद विश्वविद्यालय), एम. ए. हिंदी (गढ़वाल विश्वविद्यालय)

संप्रति : उत्तर प्रदेश सरकार की सेवा में प्रथम श्रेणी अधिकारी के पद से सेवा निवृत्त

प्रकाशन : उपन्यास, कहानी, लघुकथा, कविता, लेख, एकांकी, आलोचना, संस्मरण आदि सभी विधाओं में लेखन. पहली रचना मार्च १९७४ में छपी. तबसे अब तक सभी प्रतिष्ठित पत्र, पत्रिकाओं में दो हज़ार से अधिक रचनाएं प्रकाशित. कुछ रचनाओं का पंजाबी, गुजराती, उड़िया, हरियाणवी एवं उर्दू भाषाओं में अनुवाद.

प्रसारण : दूरदर्शन केंद्र लखनऊ तथा आकाशवाणी के इलाहाबाद, वाराणसी, नजीबाबाद, एवं छतरपुर केंद्रों से रचनाओं का प्रसारण.

अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से अलंकृत.

"अरे रे रे रे रे... क्या बात है भई, मेरी रानी बिटिया आज कुछ उदास-सी क्यों दिख रही है?" काव्या की मम्मी ने उसका चेहरा अपनी हथेलियों में भर कर चूमते हुए कहा लेकिन काव्या ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की. बस्ता और बोतल एक ओर रख कर चुपचाप बैठ गयी. उसके डरे, सहमे चेहरे से साफ़ दिख रहा था कि वह किसी बात को लेकर परेशान है.

मम्मी ने उसके कपड़े बदलवाए, हाथ मुंह धुलाया और उसके सामने खाने की थाली रख कर पुचकारते हुए फिर बोलीं — "क्या बात है बेटी, आज बहुत सुस्त-सी लग रही हो? तुम्हारी तबियत तो ठीक है न?"

काव्या ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया. सर झुकाए चुप बैठी रही. मानो किसी चिंता में लीन हो. उसे चुप और चिंतित देख कर उसकी मम्मी परेशान हो उठीं.

"क्या हुआ बेटी? स्कूल में किसी ने कुछ कहा क्या? किसी बच्चे से झगड़ा तो नहीं हुआ? तुम उदास क्यों हो ? अच्छा चलो, पहले खाना खा लो फिर आराम से बातें करेंगे." मम्मी ने प्यार से उसका सर सहलाते हुए कहा तो वह बेमन से खाना टूंगने लगी.

पिछले एक सप्ताह से चाहे लाख ज़रूरी काम हो या लाख व्यस्तता, काव्या की मम्मी सब कुछ छोड़-छाड़ कर ढाई बजे से पहले-पहले अपने घर के गेट पर ज़रूर पहुंच जाती हैं. ढाई बजे के आसपास ही गेट से बीस-पच्चीस क़दम दूर गली के मोड़ पर काव्या की स्कूल बस आ कर रुकती है. रिक्शे से काव्या के उतरते ही मम्मी हाथ हिला कर गेट पर अपनी उपस्थिति का सबूत देती हैं. जबाब में काव्या भी हाथ हिलाती है. फिर उसके बाद पीठ पर बस्ता और हाथ में पानी की बोतल लिये काव्या वहीं से दौड़

पड़ती है. घर के गेट तक उसके पहुंचने से पहले ही मम्मी लपक कर उसका बस्ता और बोतल ले लेती हैं और उसको अंगुली पकड़ाए, बातें करते घर के अंदर लौटती हैं.

रोज़ की तरह आज भी काव्या की मम्मी गेट पर खड़ी थीं. काव्या की स्कूल बस आयी, वह उतरी, उसको देख कर गेट पर खड़ी मम्मी ने मुस्कुराकर अपना हाथ हिलाया. लेकिन काव्या ने न तो जबाब में और दिनों की तरह हाथ हिलाया, न ख़ुशी दर्शायी और न ही चहकती हुई घर की तरफ़ दौड़ लगायी. रोज़ उछलती, किलकती घर में घुसने वाली चंचल काव्या आज उदास चेहरा लिये धीरे-धीरे चल कर आयी. उसे उदास, शांत और गंभीर देख कर उसकी मम्मी परेशान हो उठीं. खाना खिलाने के बाद भी मम्मी प्यार से पुचकारतीं, उसकी उदासी का कारण पूछती थक गयीं लेकिन काव्या एक चुप, हज़ार चुप.

बरामदे में बैठीं काव्या की दादी भी देख रही थीं कि और दिन चकर-पकर बोलती रहने वाली नटखट काव्या आज चुप-चुप और थकी-हारी सी है.

''अरी बहू, सवेरे की गयी एक नन्ही जान बेचारी थक गयी होगी. खिला-पिला कर थोड़ी देर सुला दो उसे. इस छोटी-सी बच्ची को पढ़ाई के नाम पर मारे डाल रहे हो तुम लोग. यह कोई स्कूल जाने और पीठ पर इतना भारी बस्ता ढोने की उम्र है? बेचारी का बचपना छीन ले रहे हो तुम लोग?'' काव्या की दादी ने कहा.

मम्मी ने दुलार कर, पुचकार कर, फुसलाकर काव्या की उदासी का कारण हर संभव तरीक़े से पूछ लिया लेकिन उसने कुछ भी नहीं बताया. अब तो आशंकाएं और भी अधिक फन फैलाने लगीं. मम्मी का मन सत्रह कोठे दौड़ने लगा. बच्ची को और अधिक कुरेदना उचित नहीं लगा. अत: कमरे में ले जा कर उसे सुला दिया मम्मी ने.

तीन साल की काव्या ने अभी बस दो सप्ताह से ही स्कूल जाना शुरू किया था. इस दो सप्ताह में आज तीसरा दिन था जब वह स्कूल से गुमसुम और उदास लौटी थी. लेकिन इस बार ख़ास बात यह थी कि वह अपनी उदासी की वजह नहीं बता रही थी.

नये-नये कपड़े पहनकर हाथ में पानी की बोतल और कंधे से बस्ता लटकाए मुहल्ले के बच्चों को स्कूल जाते देख काव्या का मन भी स्कूल जाने के लिए मचलने लगता था. ''मम्मी मैं भी स्कूल जाऊंगी. पापा मेरा भी स्कूल में नाम लिखा दो.'' स्कूल जाने के लिए वह आए दिन मम्मी, पापा से ज़िद किया करती थी. उसके पापा-मम्मी अपनी लाड़ली को शहर के सबसे प्रतिष्ठित स्कूल में पढ़ाना चाहते थे. उस स्कूल में प्रवेश के लिए निर्धारित न्यूनतम उम्र तीन साल थी. काव्या का तीसरा साल पूरा होने से काफ़ी पहले ही उसकी मम्मी ने तैयारी में दिन-रात एक कर दिया था. उसको तोते की तरह पढ़ाना और रटाना शुरू कर दिया था. आख़िर उनकी मेहनत रंग लायी. काव्या स्कूल के टेस्ट में पास हो गयी. उसकी मम्मी अपनी सफलता पर फूले नहीं समायीं.

नयी ड्रेस, नया बस्ता और पानी की रंग-बिरंगी बोतल लिए फुदकती काव्या स्कूल जाने लगी थी. घर से पहली बार बाहर की दुनिया में निकली काव्या स्कूल जा कर बहुत ख़ुश थी. नयी जगह, नये लोग, नये वातावरण और ढेर सारे नये हमउम्र दोस्तों के बीच ख़ूब मगन थी. बस एक ही गड़बड़ी थी कि स्कूल की मैडम बहुत सख़्त थीं. उनके अनुशासन का डंडा बहुत कड़ा था. वह हर समय टोका-टाकी करती रहती थीं. जरा-जरा सी बात पर बच्चों को डांट लगातीं और पनिशमेंट देती रहती थीं.

अभी तक काव्या ने घर में कभी भी अपने हाथ से खाना नहीं खाया था. या तो दादी या फिर मम्मी उसे प्यार से पुचकार कर खिलाया करती थीं. लेकिन स्कूल में न तो दादी होती थीं और न ही मम्मी. वहां तो टिफ़िन अपने हाथ से ही खाना पड़ता था. दूसरे ही दिन स्कूल में खाना खाते समय उसकी फ्राक पर जरा-सी सब्ज़ी गिर गयी. सब्ज़ी गिरी तो फ्राक पर हल्दी, तेल का पीला-सा दाग़ लग गया. दाग़ देखते ही मैडम भड़क उठीं. ''काव्या, यू आर ए डर्टी गर्ल. यू डोंट नो मैनर्स, हाउ टू ईट.''

मैडम की डांट से काव्या रुआंसी हो गयी. स्कूल में पूरे समय उसके मन में घबड़ाहट और एक अपराध-बोध पलता रहा. उस दिन भी घर लौटी तो वह गुमसुम-सी थी.

''क्या बात है मेरी रानी बेटी... आज तुम उदास क्यों हो?'' मम्मी ने पूछा तो काव्या ने अपनी फ्राक पर लगा दाग़ दिखला दिया था.

''बस इत्ती-सी बात? अरी पगली! इसमें उदास होने

की क्या बात है. फ्राक को मैं धो दूंगी तो दाग़ ग़ायब हो जायेगा. कल स्कूल तुम दूसरा फ्राक पहन कर चली जाना.'' मम्मी ने कहा तो काव्या की जान में जान आयी.

एक इतवार की रात दादी के पास लेटी काव्या उनसे देर रात तक कहानियां सुनती रही. स्कूल जाना था इसलिए अगले दिन सवेरे मम्मी ने उसे कच्ची नींद जगा दिया था. वह हड़बड़-तड़बड़ तैयार हुई और स्कूल चली गयी. रात में नींद तो पूरी हुई नहीं थी, इसलिए कक्षा में बैठे-बैठे उसको नींद आने लगी थी. मैडम पढ़ा रही थीं अचानक तभी उसे झपकी आ गयी. मैडम ने उसे झपकी लेते देख लिया था. फिर तो मैडम का पारा एकदम से गरम हो गया. उन्होंने काव्या को जमकर फटकार लगायी और सज़ा के तौर पर उसे बेंच के ऊपर खड़ा करा दिया था. उस दिन भी काव्या रोते-रोते घर लौटी थी. उसकी मम्मी ने दुलार कर, पुचकार कर जैसे-तैसे उसको शांत किया था.

और आज फिर एक चूक हो गयी काव्या से. लंच ब्रेक में टिफ़िन बॉक्स में रखा पराठा खाने के बाद काव्या कक्षा से बाहर निकली तो सामने फूलों की क्यारी में उसे फूल पर बैठी एक बड़ी-सी तितली दिख गयी. तितली को देखते ही वह सब कुछ भूल कर उसे पकड़ने को लपकी. उसे हाथ बढ़ाते देख तितली उड़ी और बगल वाली क्यारी में जा पहुंची. उसके पीछे काव्या भी बगल की क्यारी की ओर भागी.

फिर तो सिलसिला ही चल पड़ा. उस तितली को भी शायद काव्या के साथ खेलने और उसे छकाने में मजा आने लगा था. काव्या ज्यों ही पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाती तितली उड़ कर दूसरे फूल पर जा बैठती. काव्या उसके पीछे दूसरे फूल तक जाती और हाथ बढ़ाती तो तितली उड़ कर अगली क्यारी में चली जाती थी. काव्या अगली क्यारी की ओर दौड़ती तो तितली उड़ कर उससे आगे वाली क्यारी में बैठ जाती थी. इस प्रकार वह रंगीन तितली काव्या को ललचाती रही, छकाती रही और स्कूल का अनुशासन भूल कर काव्या उसके पीछे-पीछे दौड़ती रही.

लंच का समय कब समाप्त हो गया. तितली के साथ छू-पकड़ के खेल में मगन काव्या को यह पता ही नहीं चला. उधर मैडम कक्षा में आयीं और अटेंडेंस लेने लगीं तो काव्या

अनुपस्थित मिली. काव्या... काव्या... काव्या... बच्चों पर नज़र दौड़ाते हुए मैडम ने दूसरी और फिर तीसरी बार आवाज़ लगायी. लेकिन जबाब तो तब मिलता जब काव्या क्लास में उपस्थित होती. मैडम की नज़रें उसको ढूंढ रही थीं तभी किसी लड़की ने बताया — ''मैडम! काव्या तो बाहर फूलों की क्यारी में तितली पकड़ रही है.''

इतना सुनना था कि मैडम का ग़ुस्सा सातवें आसमान पर जा पहुंचा. उन्होंने आया को भेज कर काव्या को पकड़ कर बुलवाया और उसे ख़ूब डाट लगायी. न सिर्फ़ इतना बल्कि उसको पीछे वाली बेंच पर काफ़ी देर तक खड़ा रखा और उसकी डायरी में शिकायत भी लिख दी.

''काव्या! योर विहैवियर इज़ वेरी बैड. यू आर आलवेज वायलेटिंग द डिसिप्लीन. टुमारो यू बिल कम विद योर पैरेंट. अदरवाइज यू बिल नाट बी एलाउड इन क्लास.'' मैडम ने डांटते हुए कहा और पूरे पीरियड उसको कक्षा में सबसे पीछे वाली बेंच पर खड़ा रखा. यही कारण था कि आज स्कूल से लौटने के बाद से ही काव्या उदास और परेशान थी. वह परेशान थी कि अगर उसने अपनी डायरी दिखलायी तो पापा ग़ुस्सा होंगे, मम्मी भी डांट लगायेंगी और अगर कल सवेरे

वह पापा को साथ लिये बगैर स्कूल जाएगी तो मैडम स्कूल से बाहर कर देंगी. नन्हीं-सी जान समझ नहीं पा रही थी कि करे तो क्या करे.

खा-पीकर काव्या के सो जाने के बाद उसकी मम्मी ने स्कूल बैग से निकाल कर उसकी डायरी देखी तो काव्या की उदासी की वजह उनकी समझ में आ गयी. शाम को पापा आफ़िस से लौटे तो मम्मी ने उनको अकेले में सारी बात बता दी.

''क्या बात है रानी बेटी, आज तुम उदास क्यों हो? स्कूल में किसी से झगड़ा हो गया क्या? या तुम्हारी मैडम ने कुछ कहा...? क्या बात हो गयी?'' काव्या को गोद में ले कर पापा ने बिल्कुल अनजान बनते हुए पूछा.

डरी, सहमी सी काव्या अपने होंठ सिले रही. मारे भय के वह कुछ भी नहीं बता रही थी.

''बताओ बेटी, आज तुम इतनी उदास क्यों हो? अच्छा चलो... पापा के कान में बता दो. दादी ने कुछ कहा है क्या? या मम्मी ने डांट लगायी है.'' पापा ने फिर पुचकारते हुए पूछा.

पापा के प्यार, मनुहार और पुचकार से काव्या थोड़ी सहज हुई. उसने डरते-डरते स्कूल वाली बात पापा को बता दी.

''अरे! तो इसमें परेशान होने की क्या बात है मेरी गुड़िया. मैं कल तुम्हारे साथ चलूंगा तुम्हारे स्कूल. और तुम्हारी मैडम से बात भी कर लूंगा. तुम जरा भी मत घबड़ाओ.'' पापा ने काव्या का गाल थपथपाते हुए कहा तो उस बेचारी की जान में जान आयी.

अगले दिन काव्या के साथ उसके पापा स्कूल गये. उनको देखते ही मैडम ने काव्या की शिकायतों की झड़ी लगा दी — ''मिस्टर श्रीवास्तव, योर डाटर इज़ वेरी नानसीरियस. शी नोज़ नो मैनर. शी डोन्ट फ़ालो डिसिप्लीन. शी डजन्ट पे अटेन्शन इन क्लास रूम. शी इज टू मच टाकेटिव. वी कांट टालरेट इट. यू शुड टेक केयर ऑफ़ हर.''

काव्या के पापा कुछ देर तक तो चुपचाप सुनते रहे फिर एकदम से बोल पड़े — ''माफ़ कीजिएगा मैडम, मुझे आपके स्कूल का तौर-तरीक़ा बिल्कुल भी पसंद नहीं है. मासूम बच्चों के साथ ऐसे विहेव किया जाता है कहीं? यह स्कूल है कि जेलखाना? नन्हें फूल जैसे बच्चों पर इतना कठोर अनुशासन? इनका बचपना ही छीन लेना चाहती हैं आप लोग? मुझे अपनी बच्ची को मशीन नहीं बनाना है. आप अपनी डिसिप्लीन और मैनर लिये बैठे रहिए. मैं इसे घर ले जा रहा हूं. कल से आपके स्कूल में पढ़ने नहीं आयेगी मेरी बेटी.''

मैडम को सपने में भी इस बात की उम्मीद नहीं थी कि कोई अभिवावक ऐसा भी कह सकता है. उन्होंने तो सोचा था कि काव्या के पापा बेटी की ग़लती के लिए माफ़ी मांगेगे, रिग्रेट करेंगे, काव्या को डांट लगायेंगे लेकिन यहां तो मामला ही उल्टा निकला.

''आपको पता है मिस्टर श्रीवास्तव कि आप क्या कह रहे हैं. इस स्कूल में एडमिशन के लिए बच्चों के पैरेंट नाक रगड़ते हैं, जाने कहां-कहां की सिफ़ारिशें लगवाते हैं, और आप अपनी बेटी को यहां से निकालने की बात कर रहे हैं?''

''जी, पता है मुझे कि आपका स्कूल शहर का सबसे नामी स्कूल है. यह भी पता है कि यहां बच्चों को एडमिशन बहुत मुश्किल से मिलता है. लेकिन मेरे लिए आपके स्कूल के बड़े नाम और आपकी डिसिप्लीन के मुकाबले अपनी बच्ची का बचपन अधिक महत्वपूर्ण है. पढ़ाई तो यह साल, दो साल बाद भी कर लेगी. इस स्कूल से न सही किसी दूसरे स्कूल से कर लेगी. लेकिन इसकी यह तितलियों के पीछे भागने वाली बेशक़ीमती उम्र लौट कर दोबारा नहीं आने वाली. कुछ समझा आपने?''

कोई जबाब नहीं दिया मैडम ने. हक्का-बक्का हो वह काव्या के पापा का मुंह ताकती रहीं. 'निश्चित ही दिमाग़ से पैदल आदमी है यह' मैडम मन में सोचती रहीं.

''अच्छा मैडम नमस्कार. आपको भी और आपके स्कूल को भी.'' काव्या के पापा ने कहा और काव्या को अपने साथ ले कर स्कूल से बाहर निकल आये. मैडम अवाक बनीं उनका जाना देखती रहीं.

त्रिवेणी निवास, सी-२, एच-पार्क
महानगर, लखनऊ-२२६००६
मो.-९४१५२१५१३९
ई-मेल : way2akhilesh.chaman@gmail.com

हरा समंदर

■ प्रेम गुप्ता 'मानी'

एम.ए (समाजशास्त्र), (अर्थशास्त्र)
२४ अगस्त, इलाहाबाद
१९८० से लेखन, लगभग सभी विधाओं में रचनाएं प्रकाशित
मुख्य विधा कहानी और कविता, छोटी-बड़ी सभी पत्र-पत्रिकाओं में , अनेकों कहानियां प्रकाशित.
प्रकाशित कृतियां - अनुभूत, दस्तावेज़, मुझे आकाश दो, काथम (संपादित कथा संग्रह), लाल सूरज, अंजुरी भर, बाबूजी का चश्मा (कथा संग्रह), अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो (क. सं.), सवाल-दर-सवाल (ल. सं.), यह सच डराता है (संस्मरणात्मक संग्रह)
सम्मान- पं. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक स्मृति समिति द्वारा 'विशिष्ट साहित्य सम्मान' विशेष- १९८४ में कथा-संस्था 'यथार्थ' का गठन व १४ वर्षों तक लगातार हर माह कहानी-गोष्ठी का सफ़ल आयोजन.

सुनने में अजीब लग सकता है पर यह सच है. अरसे से उस मोहल्ले में रहने के बावजूद काकू का किसी से मेलजोल नहीं है. यहां तक कि वे तो सूरत से भी किसी को ठीक से नहीं पहचानते, किंतु इसके बाद भी पता नहीं क्यों लोग उनमें ख़ासी दिलचस्पी रखते हैं, उनके बारे में सब कुछ जानते हैं और जो नहीं जानते, वे जान लेने का दावा करते हैं.

बाहर से आया आदमी उनके बारे में जहां पूछेगा, वहीं उत्तर मिलेगा, 'अरे, वह कोने के मकान वाला पंडित... वही काकू न... अरे, बड़ा अजीब आदमी है. पता नहीं अपने को क्या समझता है. साला...कहीं का कलेक्टर हो जैसे... किसी से सीधे मुंह बात भी नहीं करता. 'जय राम जी' करो तो बस ऊंट-सी गर्दन हिला देता है. इस मोहल्ले में भैय्या सभी का आपस में व्यवहार है. आना-जाना है. एक-दूसरे के सुख-दुःख में साझा है, पर एक वही एक ऐसा है जो किसी से कोई मतलब नहीं रखता.'

काकू का पता बताने वाला इतना कुछ बोल जाएगा कि पूछने वाला अवाक-हतप्रभ...उसने तो सिर्फ़ काकू का पता पूछा था, इतिहास नहीं. फिर उसे इस तरह की बात पर विश्वास भी नहीं. मोहल्ले में ऐसी जलनबाजी या चुगलखोरी तो चलती ही रहती है, वरना अक्खड़ होने के अलावा काकू के स्वभाव में और कोई ख़राबी तो नहीं.

सामने वाला अगर काकू का कोई अच्छा जानने वाला हुआ और वो लाख दलील दे भी ले, तो भी उसकी बात पर कोई यक़ीन करने को तैयार नहीं होगा. यहां तक कि मोहल्ले का कोई बच्चा भी नहीं. यहां कोई ऐसा नहीं जो उनके इस अक्खड़पन का शिकार न हुआ हो. एक बार उनके घर के सामने ज़रा-सा नाली का पानी क्या जमा हो गया, कोहराम ही मच गया. वे तुरंत ही एक मजबूत-सा बांस लेकर निकल आये और फिर जुट गये उसी

से कुरेद-कुरेद कर नाली का रुख़ दूसरी ओर मोड़ने में. एक-दो लोगों ने विरोध किया तो हज़ार बातें सुना डाली. गाली-गलौज़ से भी परहेज नहीं किया. यह भी ध्यान नहीं दिया कि कौन क्या है, कहां रहता है, क्या करता है. आख़िर पंडिताइन ने ही धीरे से समझाने की कोशिश की, 'आप मिश्रा जी से क्यों लड़ गये? जानते भी हैं, वो नगरपालिका में हैं. चाहें तो सारे शहर की नाली हम लोगों के घर की तरफ़ मोड़ दें.'

पंडिताइन की बात पर काकू और भी उखड़ गये, 'अरे कौन मिश्रा...? मैं नहीं जानता किसी मिश्रा-फिसरा को...और नगरपालिका में काम करने से क्या पूरा शहर उसके बाप का हो गया...? वह बदमाशी करेगा तो क्या हम उसको छोड़ देंगे...?'

काकू की बात सुन कर पंडिताइन चुप हो गयीं. बोल कर करेंगी भी क्या? स्वभाव तो बदल नहीं सकतीं. अपने-आप ही दिन-ब-दिन मिर्ची–सा स्वभाव होता गया है काकू का, तो वे क्या करें?

पर एक बात का उन्हें भी आश्चर्य है. इतना अक्खड़-रूखा स्वभाव होने के बावजूद ऊपर से काकू के मान-सम्मान में कोई कमी नहीं है. काकू दीखते भी तो सम्मानित हैं. मुंह पीछे लोग उनके बारे में क्या-क्या कहते हैं, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं. यह तो पंडिताइन ही हैं जो उनके बारे में इधर-उधर से सुनकर उन्हें बताया करती हैं, वरना उन्हें तो जानने की ज़रूरत भी नहीं लगती. अरे, कोई जिगरवाला मुंह पर तो बोल कर देखे, थोबड़ा ही बिगाड़ कर रख देंगे. मुंह पीछे तो लोग भगवान को भी नहीं छोड़ते, फिर उनका क्या? काकू के मुंह पर किसी के बोलने की नौबत ही नहीं आती, लोग ख़ुद ही किनारा कर लेते. ऐसे झक्की के मुंह कौन लगे?

पर वह पीठ पीछे की बातें थीं. काकू के सामने सच में कोई बोल नहीं पाता था. लंबे-चौड़े काकू दिखते भी ख़ूब रूआबी थे. सुबह जब बड़े करीने से तैयार होकर वह दफ़्तर के लिए निकलते तो लोग न चाहने पर भी पता नहीं कैसे 'जय राम जी' बोल ही देते और बदले में काकू बिना उसकी तरफ़ देखे सिर हिलाते हुए आगे बढ़ जाते. 'जय राम जी' वाला अपना-सा मुंह लिये खड़ा रह जाता.

पंडिताइन दरवाज़े की आड़ से यह सब देखती तो उसे अच्छा नहीं लगता, पर औरों की तरह वह भी मुंह पर कुछ बोल नहीं पाती थीं, लेकिन उनकी पीठ फिरते ही बच्चों के आगे खुल जातीं, 'अब ऐसी भी क्या बेरुखी. मोहल्ले में बस एक यही हैं. न ख़ुद किसी से व्यवहार रखते हैं और न हमें रखने देते हैं. न किसी के घर जाओ, न किसी को बुलाओ. पता नहीं ऑफ़िस में कैसे काम करते हैं.'

ऑफ़िस में किसी के साथ उनके किस तरह के संबंध हैं, पंडिताइन सच में नहीं जानतीं, पर घर में तो काकू कछुए की तरह अपने ही खोल के भीतर दुबके रहते हैं. लगता है जैसे अपनी ही बनाई सीमा-रेखा के भीतर क़ैद हो गये हों. पंडिताइन ने कई बार कोशिश की उनके भीतर झांकने की. उनकी उस अदृश्य सीमा-रेखा को तोड़ने की. पर हर बार नाकामयाब रहीं. उन्हें समझ ही नहीं आता था कि आख़िर काकू को हो क्या गया है? इस शहर में आने से पहले तो वे ऐसे नहीं थे. काकू के उस अजाने स्वभाव के बारे में उससे अधिक और कौन जानेगा? चंद लम्हों का साथ तो है नहीं, वर्षों से काकू के सुख-दुःख की साथी रही हैं वह, पर इस तरह अपने दुःख को धीरे-धीरे समेटते हुए अपने तक ही सीमित होते चले जाना?

शायद यह बढ़ती हुई उम्र का हिस्सा हो और वह भी ऐसा जो आदमी को धीरे-धीरे ख़त्म करने लगता है. वह भी काकू जैसे आदमी को, जो अपनी बदलती ज़िंदगी को बेरुखी के आवरण में ढांपने की नाकाम कोशिश करता हो. लेकिन अगर काकू फिर पहले जैसे हो जाएं तो? तो सारी दुनिया ही बदल जाएगी.

पंडिताइन ये सब बेबाकी से काकू से कह देना चाहती हैं, पर पता नहीं क्यों कह नहीं पातीं. काकू के सामने आते ही सब कुछ उसके भीतर ही सिमट जाता है और वह ख़ुद को घर के कामों में उलझा लेती हैं.

पत्नी की इस अतिरिक्त व्यस्तता को काकू अपने अर्थों में बख़ूबी समझते हैं. उसके अनकहे शब्दों को भावों के जरिये ताड़ लेते हैं, पर बावजूद इसके उससे किसी भी तरह सहमत नहीं. अनपढ़ औरत क्या जाने उनकी उलझन? फिर अपनी उलझन उसे बता कर वे करेंगे भी क्या? उसके लिए तो बस किसी तरह गृहस्थी की ज़रूरतें पूरी हो जायें, यही काफ़ी भी है और यही जीवन का सुख भी है. सुख को परिभाषित करते हुए ज़िंदगी के बारे में जिस तरह वह सोचती हैं, उस तरह कम-से-कम काकू नहीं सोच सकते. चाहें तो भी नहीं.

उन्हें तो बस अपनी ही परिभाषा ठीक लगती है. ज़िंदगी में कितनी भी परेशानी आए, किसी से न कहना. अब इस परिभाषा से उनके भीतर-बाहर कोई चुप्पी, कोई तल्खी उभरती है तो वे क्या करें? कर भी क्या सकते हैं, सिवा इसके कि अपने को सिर्फ़ अपने तक ही सीमित कर लें.

अपनी इस परिभाषा को पोसते-पोसते काकू कब दूसरों से दूर चले गये, काकू को ख़ुद नहीं पता. पर अपनी इस आदत की वजह से अब वे अपने परिवार को भी अजीब लगने लगे हैं. पर काकू...उन्हें तो कहीं कुछ भी अजीब नहीं लगता, फिर उन्हें इसके बारे में सोचने की फ़ुर्सत ही कहां मिलती है? उनका तो पूरा महीना ही अपनी परिभाषित मर्यादा को बचाने की जोड़-तोड़ में बीतता है. बाक़ी सब दिन तो ऑफिस की व्यस्तता में बीत जाते हैं, पर छुट्टी का दिन...?

एक लंबा, न काटने वाला वक़्त उनके भीतर झांके, यह उन्हें बर्दाश्त नहीं. इस वक़्त से बचने के लिए ही वे छुट्टी वाले दिन नाश्ता-पानी निबटा के जो अपने कमरे में घुसते हैं, तो पूरे महीने-हफ़्ते का जोड़-तोड़ बिठाकर ही निकलते हैं और उनका जोड़-तोड़ भी कोई आसान नहीं. काफ़ी दिमाग़ खपाना पड़ता है उन्हें. इस बार किसकी उधारी चुकानी है, किसकी नहीं. ये हफ़्ता या महीना किसके बिना आगे खिंच सकता है, किसके बिना बिलकुल नहीं. काफ़ी लंबा हिसाब होता है और छुट्टी के दिन तो जैसे और लंबा हो जाता है.

आज भी इतवार ही था. काकू हमेशा की तरह अपना नाश्ता-पानी निबटा के अपने कमरे में घुस आये थे और फिर थोड़ी चहलक़दमी के बाद खोल लिया था अपने हिसाब का पिटारा. काकू ने अभी लाला की उधारी का हिसाब जोड़ना शुरू किया ही था कि अचानक पता नहीं कहां से आकर गोपीचंदर ने अड़ंगी मार दी. काकू एकदम खिजला उठे. जी चाहा, अभी जाकर गोपीचंदर की टांग तोड़ दें, पर दूसरे ही क्षण वे अपनी तल्ख़ी दबा कर बैठ गये. उनकी उम्र का कोई होता तो अभी निबट लेते, पर इसका क्या करें? किससे लड़ें, किससे शिकायत करें? जानते भी तो नहीं कि यह है कौन?

हार कर काकू ने अपना सारा ध्यान फिर हिसाब की ओर केंद्रित किया ही था कि तभी गोपीचंदर दोबारा आ खड़ा हुआ और चीख़-चीख़ कर उन्हें चुनौती देने लगा. अब काकू से बर्दाश्त नहीं हुआ. बड़े गुस्से से वे फनफनाते हुए उठे तो, पर पता नहीं क्या सोच कर बाहर जाने की बजाय खिड़की का पल्ला बंद कर दिया. अभी बहुत काम है, किराने वाले लाला की उधारी है और साथ में दूध वाले का हिसाब भी.

महीने के आख़िरी हफ़्ते का जोड़ बिठाकर अगले महीने की ओर सरक ही रहे थे कि तभी शोर में हिसाब भी गड़बड़ा गया और साथ ही काकू भी. इतने जातां से मुंह ज़बानी हिसाब बैठाया था, सब हवा में फुर्र... और उसकी जगह बस गोपीचंदर की चीख़... काकू के अंदर से जैसे आग जल उठी, 'यह कौन साला हरामी की औलाद है जो गला फाड़ कर गोपीचंदर को बुला रहा है?' भीतर की सारी तल्ख़ी कड़ियल सांप की तरह फुफकारी तो काकू ने पूरे वेग से चीख़ते हुए खिड़की का पल्ला भड़ाक से खोल दिया.

खिड़की के खुलते ही हवा का एक तेज़ सरसराता झोंका उन्हें बेशर्मी से धक्का देता भीतर घुस आया और उसके साथ ही घुस आयी बच्चों की आह्लादित चीख़... हरा समंदर, गोपीचंदर... बोल मेरी मछली, कित्ता पानी?

अब काकू की समझ में आया कि ये साला गोपीचंदर आख़िर है कौन... सामने वाला मकान इतने दिनों से खाली पड़ा था तो गोपीचंदर का कहीं अता-पता नहीं था. मकान आबाद हुआ तो गोपीचंदर भी आ डटा उनकी खिड़की के सामने.

सामने वाले उस मकान के बच्चों की ही सारी कारस्तानी लगती है यह, जो सुबह-सुबह मोहल्ले के हुड़दंगी बच्चों को इकट्ठा करके यह मटरगश्ती करवाते हैं और मटरगश्ती भी कहां ठीक उनकी नाक की सीध में बने पार्क में और वह भी कैसा अपनी छाती में पूरे मोहल्ले की गंदगी समाये हुए. उन्होंने गुस्से में भर कर पार्क की ओर कुछ इस तरह देखा जैसे कोई बेहद गंदा आदमी उनके सामने खड़ा हो. पार्क तो सचमुच जैसे बरसों से बिना नहाए आदमी की तरह मैले-कुचैले कपड़ों में गंधाता उनके सामने खड़ा था. उसके आसपास कूड़े के ढेर से बना ऊबड़-खाबड़ पहाड़ था और बीच में भी कम गंदगी नहीं थी. जगह-जगह बिखरे गोबर के ढेर...कुत्ते की टट्टी...और भी पता नहीं क्या-क्या... हवा का एक हल्का-सा झोंका भी सरसराता तो अमोनिया की एक अजीब-सी तीख़ी-कसैली गंध भी उसके साथ ही सरसराती फेफड़ों में घुस जाती.

काकू ने देखने की बहुत कोशिश की पर इतनी भीषण गंदगी में उन्हें कहीं भी हरा समंदर नहीं दिखा. काकू को बेहद अजीब लगा और उससे भी अजीब लगे, वे बच्चे... आख़िर किस धातु के बने हैं ये बच्चे? इतनी गंदगी के बीच भी ख़ुश होकर गोपीचंदर व उसकी मछली के साथ मिल कर पानी माप रहे हैं. काकू की जगह कोई और भी होता तो उसे भी गुस्सा आता. भला ये भी कोई जगह है खेलने की? गंदगी के रेगिस्तानी बीहड़ में दुर्गंध को झेलते हुए पानी के कतरे की तलाश?

काकू का गुस्सा अब साबुन के फेन की तरह उफनाने लगा, 'कैसे हैं इनके मां-बाप? उन्हें चिंता भी नहीं होती कि सुबह की ताज़ी हवा की जगह उनके बच्चों के कोमल फेफड़ों में ज़माने भर की गंदगी गंध बन कर घुस रही. छि:!

बच्चे फिर चीख़ने-उछलने लगे तो काकू के गुस्से से भरा झाग बाहर आने लगा. उनकी इच्छा हुई कि अभी बाहर जाएं और फिर बच्चों से उनकी सारी मछलियां छीन लें और इस गोपीचंदर की भी टांग तोड़ दें. जाकर अगर बच्चों को धमका दें तो सारा खेल ही ख़त्म. यह भी कोई बात हुई भला? इस गोपीचंदर ने तो उनका सारा हिसाब ही गड़बड़ करके रख दिया. उनकी तरह अगर इन लोगों को हिसाब-किताब करके ज़िंदगी को मापना पड़े तो इन बच्चुओं की सिट्टी-पिट्टी ही गुम हो जाये. बाप ढेरों कमाता है न...इसीलिए हरा समंदर दिखाई पड़ता है वर्ना...

खिड़की के पास खड़े काकू कोई निर्णय लें कि तभी एक ढेला खिड़की से आकर टकराया. काकू एकदम उछल कर पीछे हट गये वर्ना पूरा मुंह ही मिट्टी-मिट्टी हो जाता. उन्होंने क्रोध से बाहर झांका पर बच्चे तो जैसे सारी घटनाओं से अनजान पहले की ही तरह समंदर नापने में लगे थे. तो ढेला किसने फेंका? काकू को कुछ समझ नहीं आया. दूर की नज़र वाला चश्मा भी नहीं पहने थे, इसी से पहचान भी नहीं पा रहे थे. पहचान लेते तो कम-से-कम बाहर जाकर उसका मुंह नोच लेते या फिर घसीटते हुए उसके बाप के पास ही ले जाते.

काकू तुरंत अपना चश्मा उठाने मुड़े कि तभी दूसरा ढेला आकर खिड़की से टकराया. इस बार ढेरों मिट्टी खिड़की के भीतर भी आकर गिरी. कुछ हवा की हमजोली बन उनके हिसाबी पन्नों को मटमैला कर गयी, तो कुछ आसपास बिखर गयी.

काकू ने यह सब देखा तो गुस्सा बर्दाश्त के बाहर हो गया. ढेला फेंकनेवाले को देख-पहचान तो पाए नहीं सो जैसे किसी अनजानी शै को दहाड़े, 'यह किसके पिल्ले हैं? हरामज़ादे नरक में भी मटरगश्ती करते हैं और दूसरों को परेशान करते हैं.'

बाहर से काकू को भय-भरी प्रतिक्रिया की आशा थी, पर यह क्या? बच्चे तो और भी हो-हल्ला करते, गोपीचंदर को पुकारते हुए झुंड बना कर भागे. काकू ने बड़ी शीघ्रता से चश्मा लगा कर पहचानने की कोशिश की, पर पहचान नहीं पाए. उनकी आंखों के आगे बच्चों की नन्हीं-नन्हीं पीठ थीं. हिलती-डुलती-भागती. काकू ने पूरा ज़ोर लगा कर खिड़की के दोनों पल्लों को धकेल दिया. इधर खिड़की बंद हुई ही थी कि उधर आंगन का दरवाज़ा चूं की मरियल आवाज़ करता खुला और फिर उतनी ही मरियल चाल से बंद भी हो गया.

काकू तेज़ी से बाहर की ओर लपके, कुछ इस तरह से कि अगर ज़रा भी देर हुई तो सारा खेल-तमाशा ख़त्म और जैसे ही वे बाहर आये, सामने सिर झुकाए अपने बच्चों को खड़ा देख कर सारा माजरा समझ गये. इसका मतलब उन्होंने दूसरों के साथ अपने को भी जुनूनी गाली दे डाली? उनका पूरा चेहरा तमतमा उठा. अपने तो सारे पिल्ले उस खेल में शामिल थे. और ये पिल्ले भी कैसे गूंगे-अंधे से. मिट्टी का ढेला घर की ओर आते देख कर भी नहीं बता सके कि यह घर उनका है और खिड़की पर खड़ा आदमी उनका बाप है.

मारे गुस्से के अब तो काकू ही समंदर बन गये. और वह भी ज्वार-भाटे उठते समंदर से...एकदम से भीषण लहरी उछाल मार कर सबसे बड़े लड़के को धर दबोचा, 'क्यों बे... पढ़ाई-लिखाई छोड़ कर इन गधों के साथ तू भी समंदर मापता है...? ओ, अंदर चल कर तुझे अच्छे से बताऊं कि समंदर में कितना पानी है.'

बच्चे चाह कर भी अपने बचाव का रास्ता नहीं ढूंढ पाये और उन पर बिन मौसम बरसात की तरह लात-घूंसा बरसने लगे. जिसके हिस्से जितना कतरा था, मिला और फिर कतरा ही क्यों, उन्हें तो चारों ओर हरा ही हरा नज़र आने लगा था. हरा समंदर, हरी काई से अटा समंदर और इधर काकू को भी जैसे होश नहीं था. लात-घूंसे से मन नहीं भरा

तो कमरे से जाकर छड़ी उठा लाये और फिर दे तड़ातड़, 'साले' यहां सारा दिन मर-मर कर कमाते हैं. छुट्टी के दिन भी आराम नहीं करते. सारा दिन हाड़-मांस गला पूरे महीने का जुगाड़ बैठाते हैं और ये लफंगे हैं कि मौज मारते समंदर मापते हैं. अपने बाप का भी डर नहीं. सीधे मुंह पर ही गोपीचंदर...गोपीचंद... साले बरसाती मेढक. अभी ढंग से बैठने का सऊर आया नहीं और सबकी नक़ल में आवारा छोकरों के साथ मिल कर बड़ा-बड़ा खेल खेलते हैं. बोल, अब जाएगा उनके साथ? मापेगा और समंदर?'

ग़ुस्से में उफनाये, बौराए काकू का हाथ ही नहीं अघा रहा था जैसे. वे तो उस दिन बच्चों की खाल ही उधेड़ देते पर पंडिताइन ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया, 'अब मार ही डालोगे क्या? अरे इन्होंने किया ही क्या है? एक ज़रा–सा खेल ही तो लिया. तुम तो चाहते हो कि बच्चे भी तुम्हारी तरह घर-घुसने हो जाएं, न किसी से हंसना...न बोलना...यह भी कोई ज़िंदगी है भला? नरक से भी बदतर है ये ज़िंदगी... अरे, ख़ुद न हंसो-बोलो, पर बच्चों को तो न रोको. आख़िर ये बच्चे किस हिसाब का रोना लेकर बैठें?'

'क्यों...पढ़ाई-लिखाई नहीं है क्या?' काकू के सामने पंडिताइन पता नहीं किस रौ में पहली बार इतना बोल गयी थीं. मन का सारा गुबार जैसे मौक़ा मिलते ही पूरा निकाल फेंका था. काकू को याद नहीं आया कि पिछली बार कब पंडिताइन को ऐसे ग़ुबार निकालते देखा था, पर आज अरसे बाद देखा तो एकदम धीमे पड़ गये. लगा जैसे ज़्यादा ही जोर से पीट दिया बच्चों को, 'शैतानी न करते तो मैं पीटता ही क्यों? ये भी कोई हुड़दंग करने का वक़्त है क्या?'

'तो क्या छुट्टी के दिन भी बच्चे बस शांत होकर पढ़ाई ही करें. खेलें न बिलकुल?' पानी का एक नन्हा-सा कतरा पंडिताइन की आंखों के कोटरों में पारदर्शी बिंदु-सा झलक उठा, 'पूरे मोहल्ले के बच्चे खेलते हैं, बस्स एक इसी घर में मुर्दनी छायी रहती है. अब तुम घर के ख़र्च पूरे नहीं कर पाते तो इसमें बच्चों का क्या दोष...? वे कौन-सा रोज हलवा-पूरी मांगते हैं? कितनी बार रात की बची रोटी ही खाकर संतोष कर लेते हैं. अपने हमउम्र बच्चों के साथ थोड़ा खेल कर अगर उनके चेहरे पर हलकी हंसी-ख़ुशी उभरती है तो तुम्हें वो भी अच्छा नहीं लगता.'

पंडिताइन की आंखों का वह नन्हा-सा कतरा बूंद-बूंद इकट्ठा होकर अब समंदर का रूप लेने लगा था. बच्चे भी सुबकते हुए उनके आसपास दुबक गये थे. काकू के भीतर का उबाल भी कुछ कम हो गया था. उनका मन ग्लानि से भर गया. लगा, जैसे ज्वार के थमने के बाद समंदर एकदम शांत हो जाता है, वैसा ही उनके भीतर भी कुछ हुआ है, पर आसपास का माहौल...? काकू का तो उस ओर ध्यान ही नहीं गया. उन्होंने कभी गहरे से सोचा ही नहीं इस बारे में ... तूफ़ान थमने के बाद समंदर तो शांत हो जाता पर आसपास का तो बहुत कुछ तहस-नहस हो जाता है. उस अनचाहे-अनजाने विध्वंस के बाद सब कुछ क्या पहले की तरह सहेजा जा सकता है... और वह भी पूरी सहजता से...? तूफ़ान गुज़र जाने के बाद काकू यही कोशिश तो करते रहे हैं हर बार, लेकिन इस बार...? काकू चाहने पर भी न जाने क्यों कुछ भी सहेज नहीं पाये और चुपचाप अपने कमरे में आ गये.

कमरे में आकर उन्होंने धीरे से खिड़की फिर खोल दी. पर खिड़की खुलते ही वे और असहज हो उठे. हवा के हलके झोंके के साथ जैसे अमोनिया-घुली एक कसैली और अजीब गंध भीतर तक घुस आयी. और फिर उनकी सांसों के साथ घुल कर उसे और कसैला कर गयी. काकू का मन एकदम तिक्त हो उठा. उन्होंने खिड़की बंद करने के लिए हाथ बढ़ाया पर पता नहीं क्यों बंद नहीं कर पाये.

सुबह जो धूप टुकड़ों में बंटी थी, वो अब एकाकार होकर पूरे पार्क में फैल गयी थी. तीखी धूप की पीली-चमकदार रौशनी में थोड़ी देर पहले हरे समंदर का प्रतीक बना धूल-अटा मैदान साफ़ चमक रहा था. उस तीखी धूप की गर्म चादर को ओढ़ कर हवा हल्की-सी भी करवट बदलती तो धूल का गुबार ऊपर तक उठ आता और फिर थोड़ी देर बाद ही एक-दूसरे का हाथ पकड़ घेरा फैलाते बच्चों-सा ही आवाज़ करता फैल जाता ज़मीन पर....

काकू हट गये खिड़की से. हिसाब-क़िताब पहले ही बिखर गया था. चालीस जमा पचास की बात तो दूर थी, कागज़-पत्तर तक हवा में उड़ कर इधर-उधर बिखर गये थे. यद्यपि काकू हमेशा पेपर-क्लिप लगाते. उसकी जांबाज़ कोशिशों के बावजूद पन्ने उसकी पकड़ से आज़ाद हो इधर-उधर डोल गये थे. काकू पल भर बड़े अनमनेपन से उनको घूरते रहे, फिर अपने मन की तरह जबरन उन्हें भी सब तरफ़

से समेट लिया. पन्ने उनकी भी गिरफ़्त से आज़ाद होकर हवा के साथ फिर खेलें, इससे पहले ही उन्होंने उसे बड़ी क्लिप से जकड़ दिया.

पन्नों को समेट कर घूमे तो नज़र अनायास मेज पर रखे पर्स पर ठहर गयी. हिसाब शुरू करते वक़्त उसे जेब से निकाल कर मेज़ पर रख लिया था. शायद मन को नखलिस्तानी तसल्ली देने के लिए या हिसाब लगाने के लिए कि यह हफ़्ता किस तरह बिना किचकिच या तनाव के गुज़ारा जा सकता है, या... काकू स्वयं अचकचा गये. उनको खुद समझ नहीं आ रहा था कि आख़िर उन्होंने यह पर्स मेज़ पर रखा क्यों था? पर्स में रखे रुपयों की गिनती तो हिसाब के बाद भी की जा सकती थी...और उस गिनती के बाद गृहस्थी की भावी योजनाएं भी बनायी जा सकती थीं... योजनाएं...?

काकू के भीतर की कैक्टसी तल्ख़ी सहसा ही परिवर्तित हो दयनीयता के श्वेत-पारदर्शी बिंदू-सी उनके माथे पर झलकने लगी. हां, हिसाब-क़िताब बनाते समय उनके दिमाग़ में अपने परिवार के लिए ढेरों योजनाएं होती थीं. अब यह बात दीगर थी कि वे कभी मूर्त रूप नहीं ले पायीं और कभी कुछ जुगाड़ बैठा कर उन्होंने उसे मूर्त रूप देने की कोशिश की भी तो पता नहीं कैसे-कहां से दूसरी कोई ज़रूरत बाज़ की तरह उस पर झपट्टा मार देती और तब वे बेबस पंछी-सा पंख फड़फड़ाने के सिवा कुछ और नहीं कर पाते थे. इस वक़्त भी काकू अपने को कुछ वैसा ही बेबस महसूस कर रहे थे. क्लिप में जकड़े कागज़ हवा की शह पाकर आज़ाद होने को बेताब था और काकू सोच रहे थे कि अभी कितना कुछ करना बाक़ी है. कितनों का तो अभी उधार ही चुकाना है और साथ ही घर की ढेरों ज़रूरतें भी पूरी करनी है पर महंगाई की इस तूफ़ानी वर्षा में एक टूटे छाते से काम चलेगा? अकेले होते तो किसी तरह काम चल जाता, पर पूरे परिवार के साथ...?

अभी इसी महीने जैसे ही तनख़्वाह मिली, मिश्रा ने तीन हज़ार झटक लिये. वे ना-ना करते रह गये पर वह माना ही नहीं. उन्हें भी मन मसोस कर चुप रह जाना पड़ा. छह महीना पहले पंडिताइन की बीमारी में उससे उधार लिया था. रोज़ आंखें चुराते फिरते थे और तनख़्वाह वाले दिन तो एकदम कन्नी काट जाते, पर इस बार जैसे वो घात लगाए बैठा था. तनख़्वाह हाथ आते ही वे छिप कर निकलने ही वाले थे कि पता नहीं कहां से एकदम नमूदार हो गया, 'वाह पंडित जी...लेते बखत तो ख़ूब मिल लेते हो पर देने का बखत आया तो ग़ायब...?'

वे एकदम खिसिया गये. लगा जैसे बीच बाज़ार में उन्हें चोरी करते हुए किसी ने रंगे-हाथों पकड़ लिया गया हो, 'अरे नहीं भई...ऐसी कोई बात नहीं है. इस बार ख़ुद आकर देने की सोच रहा था, तब तक तुम आ गये...'

'अरे अब सामने आ गया हूं तो बातें न बनाओ. पैसे के साथ पकड़ लिया तो देने की बात करने लगे. आख़िर ये भी तो सोचो कि देने वाले की भी पचासों ज़रूरतें होती हैं... उसे भी अपना घर-परिवार चलाना होता है...'

काकू मुंह में भर गये कसैलेपन को भीतर गटकें या बाहर उगलें कि तभी उनके हाथ से पांच सौ के नोटों को झटकता मिश्रा आगे बढ़ गया, 'अपना तो हिसाब चुकता हो गया भाई... अब किसी और का हो तो उसे भी दे दो. कम-से-कम उसका पैसा डूबने से तो बच जाये...'

काकू के मुंह के भीतर लिजलिजा...कसैला-सा ढेर सारा फिर ज़मा होने लगा कि तभी उन्होंने ज़ोर से गला खंखार कर खिड़की की सलाखों से मुंह सटा कर उसे बाहर उगल दिया. भीतर का कसैलापन बाहर आ गया तो उन्होंने अपने को कुछ हल्का महसूस किया. पल भर वे वहीं खड़े धूप के नुकीले पत्थरों को निहारते रहे, फिर सहसा ही थकान महसूस कर सिगरेट सुलगा ली. मुंह से निकलते धुएं की बनती-बिगड़ती आकृति के बीच काकू का मन गुपचुप फिर उद्वेलित होने लगा... कैसे बीतेगी इस तरह ज़िंदगी...? पंद्रह तारीख़ आते-आते जैसे सब कुछ रीतने लगता है. हर बार बस वही रोना... वही किचकिच... राशन वाले का इतना बाक़ी है... पिछला चुकाये बिना अन्न का एक दाना भी नहीं देगा... दूध वाला अलग धमकी देता है, दूध में पानी पूरे अखाड़ी जोश के साथ मिलाता है. टोको तो बेशरम गुर्राहट, 'देने के बखत तो एक धेला भी नहीं देते... दो-दो महीना रिझा कर तब हिसाब करते हैं और वो भी कई बार कम ही मिलता है... और दूध चाहिए ख़ूब गाढ़ा-मलाईदार... लेना हो तो लो, नहीं तो हमारा पूरा हिसाब कर दो...और ख़तम करो टंटा....'

हार कर काकू चुप रह जाते. यह दूध वाला बरसों से दूध दे रहा. इसी से बखत-ज़रूरत हारी-बीमारी में उधारी

चल जाती है. दूसरा ऐसा करेगा क्या...? फिर क्या गारंटी कि दूसरा भी दूध में पानी नहीं मिलाएगा...?

काकू का दिमाग़ एकदम भन्ना गया. उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें, क्या न करें...? बच्चे अभी एकदम छोटे-नासमझ हैं. वक़्त-बेवक़्त उनकी ज़रूरतें सिर उठा देती हैं. पूरा नहीं कर पाते तो सब के मन एक अजीब वीरानगी में डूब जाते हैं. ख़ुद वे भी तो डूबने से बच नहीं पाते और तब उनके अंदर एक अजीब तरह की लोहे-सी कठोर तल्ख़ी उभर आती है. इस समय भी उलझन की तेज़ आंच पाकर लोहा पिघलता कि तभी मन की खिड़की से ठंडी हवा का एक हल्का-सा झोंका उठा और उनके हृदय को एक सकून दे गया.

अगर इस बार पुराने राशनवाले के यहां से सामान न लाकर किसी और के यहां से आधे उधार और आधा नकद देकर राशन ले आएं तो कैसा रहे...? इससे बस यही तो करना होगा कि एकाध महीने उस तरफ़ से निकलना बंद कर देंगे. रुपये का कोई बंदोबस्त होते ही उसका कर्ज़ा चुका देंगे... बाक़ी जो बचेगा, उससे घर की कोई रुकी हुई ज़रूरत पूरी कर देंगे.

काकू आगे कुछ और सोचते कि तभी ज़ोर से चिहुंक पड़े. मन-ही-मन हिसाब लगाने में वे उंगलियों के बीच फंसी सिगरेट भूल ही चुके थे. ध्यान तो तब आया जब पूरी तरह ख़त्म होने की त्रासदी तक पहुंची सिगरेट उनकी उंगली की त्वचा स्पर्श कर बैठी. चिहुंक कर काकू ने सिगरेट वहीं ज़मीन पर फेंक दी और फिर अपनी उंगली सहलाने लगे.

ज़मीन पर पड़ा सिगरेट का अधबुझा टुकड़ा अपनी अंतिम सांस पर था. काकू ने बड़ी हताशा से उसकी ओर देखा और तभी उनके भीतर एक नर्म सोच ने जन्म लिया... अगर वे सिगरेट पीना छोड़ दें तो...? होगा तो यही न कि कुछ दिन जी कौव्वता रहेगा. उंगलियां बेचैन रहेंगी और एकांत कुछ और बेचैन कर देगा, पर इससे हुई बचत से कुछ ख़र्चे तो निपट जाएंगे.

काकू को अपने पर कोफ़्त हुई. अब तक घर की कितनी सारी ज़रूरतों में काट-छांट करते रहे हैं, पर अपनी इस फालतू ज़रूरत की ओर तो कभी ध्यान ही नहीं दिया. यद्यपि पंडिताइन ने दबी जुबान से कई बार उन्हें ये बुरी आदत छोड़ने की ओर इशारा भी किया, पर वे तो जैसे नासमझ बने रहे. इस बार मिश्रा एकदम से तीन हज़ार न झटक लेता तो वे शायद अब भी न चेतते.

काकू ने मेज़ पर रखी डिब्बी को बड़ी निरीहता से घूरा और फिर तुरंत ही उसे उठा कर अलमारी में रख दिया. डिब्बी में अभी भी तीन सिगरेटें थीं. काकू के मन में थोड़ी तसल्ली हुई. रोज़ आधी-आधी भी पियेंगे तो हफ़्ता निकल जाएगा... उसके बाद जी तो कड़ा करना ही है.

थोड़ी देर काकू यूं ही बैठे रहे, लेकिन जब पूरी तरह कुछ पक्का नहीं कर पाए तो उठ कर उन्होंने पुराने हिसाब को फाड़ कर खिड़की से बाहर फेंक दिया और फिर बैठ गये नया हिसाब बनाने. सिगरेट में कटौती की बात से उनके मन में कुछ नये विचारों ने जन्म लिया था.

इन विचारों के चलते काकू ने मन की उथल-पुथल को भी पीछे धकेल दिया. इस बार राशन वाले को कुछ थोड़ा-बहुत तो दे ही देंगे, दूध वाले का हिसाब भी चुकता कर देंगे... अगर कुछ गुंजाइश हुई तो पंडिताइन के लिए कोई सस्ती-सी ही नयी साड़ी भी ला देंगे... जाने कब से बस दो-तीन जोड़ी में ही काम चला रही.

नया हिसाब बनाते समय काकू फिर गड़बड़ा गये. इस महीने बच्चों की फ़ीस भी तो भरनी है. मुन्ने की तो स्कूल यूनिफॉर्म वाली पैन्ट भी फट गयी है. टीचर से कितनी बार डांट खाकर रोते हुए घर आया है.

काकू ने उकता कर हिसाब बनाना बंद कर दिया. उनकी तो समझ नहीं आ रहा था कि कहां काटें, कहां जोड़ें... शुरू से जो हिसाब गड़बड़ाया तो जैसे अब गड़बड़ा ही गया कोशिश करने पर भी उसका सिरा पकड़ में नहीं आ रहा था. काकू फिर एक अजीब-सी तल्ख़ उदासी में घिरने लगे. यद्यपि इस समय उनके आसपास कहीं भी हरे समंदर की लहरों का शोर नहीं था, पर फिर भी उन्हें लगा कि जैसे वे समंदर में डूब रहे हों.

पर काकू डूबना नहीं चाहते... इस तरह तो कतई नहीं... हिसाब को समेट कर वे बाहर आ गये. बाहर का माहौल अभी भी सन्नाटे से घिरा हुआ था. मन का गुबार शांत होने पर पंडिताइन रसोई में चली गयी थीं और बच्चे अंदर वाले कमरे में ...

काकू को अपराध बोध होने लगा. थोड़ी देर पहले उन्होंने जो कुछ किया, अच्छा नहीं किया. सचमुच बच्चों को

कुछ दे नहीं सकते तो उनके पास का बचा-खुचा भी छीनने का उन्हें क्या हक़ है...? काकू की इच्छा हुई कि कमरे में जाकर बच्चों को थोड़ा दुलार कर लें... थोड़ी देर पहले का कसैलापन कुछ तो कम होगा. काकू आगे बढ़े तो, पर अगले ही पल एक अनजाने अहसास ने उनके पांव जकड़ लिए... इस तरह तो वे बच्चों के आगे छोटे पड़ जाएंगे... नहीं...यह सही नहीं... गंभीरता का जो आवरण उन्होंने अपने ऊपर चढ़ा रखा है, वही ठीक है. इससे कम-से-कम बच्चे उनके सामने किसी चीज़ के लिए ज़िद करने का साहस तो नहीं कर पाएंगे.

सहसा, पता नहीं क्यों काकू का दम घुटने लगा. उस घुटन से बचने के लिए वे रसोई के दरवाज़े पर जाकर खड़े हो गये. पंडिताइन कुछ बोलें तो शायद घुटन कुछ कम हो पर पंडिताइन ने तो उनकी ओर देखा भी नहीं...उनके वहां मौजूद होने के अनदेखे अहसास के बावजूद...

काकू पल भर खड़े बड़ी असहायता से पंडिताइन को काम करते देखते रहे, फिर जब खड़ा रहना मुश्किल लगने लगा तो जाकर कपड़े बदले और दुबारा रसोई के दरवाज़े पर आ खड़े हुए, 'थोड़ी देर के लिए ज़रा बाहर जा रहा हूं... कुछ चाहिए तो बोल दो, लेता आऊंगा...'

'नहीं, कुछ नहीं चाहिए,' पंडिताइन ने उनकी ओर देखा भी नहीं. काकू के मन को चोट-सी लगी. लगा, जैसे भीतर हल्का-सा कहीं कुछ चटका है और उस चटकन ने उन्हें बेचैन कर दिया है...सुबह से भी ज़्यादा...

अपनी उस बेचैनी को काकू ने फिर जबरन गंभीरता के आवरण के नीचे दुबका लिया, 'अच्छा ठीक है...तुम खाना तैयार करो, मैं अभी आता हूं...' और फिर पल भर भी देर नहीं की बाहर आने में ...

अपनी उस अनाम घुटन से बचने के लिए काकू घर से बाहर तो निकल आये पर समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें...कहां जाएं...? उनकी आखों के आगे काली कोलतार सनी सड़क का किसी आदिवासी युवती-सा चिकना बदन तीखी धूप में तप कर और निखर आया था और अब आंखों को चुंधिया रहा था.

सहसा ही काकू को लगा वे निरुद्देश्य ही निकल आये हैं सड़क पर... कुछ ख़रीदना नहीं, कहीं जाना नहीं...तब...? तब क्या बाहर निकलने के बहाने वे सिर्फ़ अपने अंदर की घुटन से बचना चाहते थे ? शायद हां...

मन-ही-मन ख़ुद से बातें करते हुए काकू ने अपने आसपास नज़र दौड़ाई... कहीं कोई छांह दिख जाए तो पल दो पल वहीं बैठ कर थोड़ा सुस्ता लें. अभी ही घर से निकले हैं, तुरंत ही वापस चले गये तो पंडिताइन क्या सोचेगी? उसके सामने तो हमेशा व्यस्त रहने का दिखावा करते हैं न....

एक थके हुए पंछी की तरह छांह की तलाश में काफ़ी दूर तक नज़र दौड़ाने के बावजूद काकू को दूर-दूर तक बस कंक्रीट के जंगल-सी बस्ती और ऊपर तपता खुला आसमान ही दिखा तो पस्त से होकर वे वापस लौट पड़े. आसपास जाने कितने लोग चल रहे थे, पर काकू को लगा जैसे उस तपते रेगिस्तान में वे एकदम अकेले हों...

प्यास से काकू का गला चटकने लगा. उन्हें याद आया, सुबह से उन्होंने एक बूंद पानी नहीं पिया था. उन्होंने एक प्यासी नज़र चारों ओर घुमायी पर आसपास कोई हैंडपंप भी नहीं था. बेध्यानी में पर्स भी घर पर ही भूल आये थे वर्ना किसी पान की दुकान से पानी का एक पॉउच ही ख़रीद कर पी लेते. शायद गले के साथ-साथ आत्मा की चटकन भी थोड़ी कम होती...

काकू की आंखों के भीतर धीरे-धीरे समंदर प्रवेश करने लगा. इससे पहले कि पूरी तरह प्रवेश करके वो समंदर अपनी लहरों को बाहर उछाले, उससे पहले ही उन्होंने उसे कुर्ते की बांह में सोख लिया और फिर तेज़ चाल से वापस घर की ओर लौट पड़े.

घर पहुंच कर काकू को लगा, तपन से बच कर वे छांह में आ गये हों. घर का माहौल सामान्य हो चुका था. बच्चे सब कुछ भूल कर खाना खा रहे थे और पंडिताइन हमेशा की तरह उनके इंतज़ार में थीं.

बच्चों को खाते देख कर काकू को भी तेज़ भूख़ लग आयी, पर पहले उन्होंने पंडिताइन से मांग कर एक गिलास पानी पिया. पानी हलक से उतरा तो लगा, जैसे अंदर की घुटन और तपन भी उसकी शीतलता से भाप बन कर उड़ गयी हो.

हलके मन से खाना खाते काकू को ज़िंदगी थोड़ी बेहतर महसूस होने लगी, पर खा-पीकर अपने कमरे में आये तो फिर वही राक्षसी सन्नाटा... यही हाल रहा तो कैसे

कटेगी ज़िंदगी...? कैसे पूरी होंगी घर की तमाम ज़रूरतें...? एक पल को दिल किया, अधिक पैसे मिलें, कोई ऐसी नौकरी ढूंढे...पर आजकल नये उम्र के पढ़े-लिखे बच्चों को आसानी से नौकरी नहीं मिलती तो इस उम्र में उनको कोई और अधिक तनख़्वाह वाली नौकरी कहां से मिलेगी? तो फिर क्या वरें...?काकू की आंखों के आगे अंधेरा-सा घिरने लगा. थोड़ी देर पहले सकून के जिस ठंडे झरने में भीगने का अहसास कर पुलकित हो उठे थे, उसी झरने का पानी जैसे भीतर की अनजानी आग की आंच पाकर खौल उठा था.

उस खौलन से काकू का पूरा अस्तित्व छालों से भरता कि एक ठंडे मरहमी स्पर्श ने उन्हें बचा लिया, 'एक बात कहूं आज... मानोगे? गुस्सा तो नहीं होगे...?'

काकू ने धीरे से आंखें खोल अरसे बाद स्पर्शित हुए अहसास को अपने हाथों के नीचे हौले से क़ैद कर लिया, 'बोलो न...आज ग़ुस्सा नहीं होऊंगा...'

'अपनी परेशानी तुम मुझसे कहते नहीं तो क्या मैं समझती भी नहीं...? घर के ख़र्चे इतनी काट-छांट के बाद भी पूरे नहीं होते, ये तो मैं भी जानती हूं... तुम कोई और जुगाड़ क्यों नहीं बैठाते...?'

'क्या करूं...? तुम्हीं कहो...इस उम्र में क्या कोई और नौकरी मिलेगी...?' काकू ने एक लंबी उसांस भरी, 'अब तो इसी तरह खींचतान कर ज़िंदगी चलानी है... बस्स, बाहर किसी तरह इज्ज़त बची रहे, अब तो इसी बात की ज़्यादा चिंता रहती है.'

काकू ने कुर्सी पर सिर टेक कर फिर आंखें बंद कर लीं तो पंडिताइन ने अपनी नर्म हथेली से उसका माथा सहला दिया, 'इतना दुखी क्यों होते हो...? मैं तुम्हारी तरह पढ़ी-लिखी तो हूं नहीं लेकिन फिर भी इतना तो कहूंगी कि दुनिया-समाज की ज़्यादा परवाह न करो... तुम अपनी ज़िद छोड़ो और मेरी बात मानो...तुम कुछ बच्चों की ट्यूशन ले लो...दूर न भी जाओ तो अपने मोहल्ले में ही देख लो... शाम को तो खाली ही रहते हो, ट्यूशन मिल जाएंगी तो घर की ज़रूरतें भी पूरी होंगी और थोड़ा लोगों से मेल-जोल भी बढ़ेगा...'

काकू एकदम से सीधे बैठ गये. पंडिताइन की बात में दम तो था. उन्हें आश्चर्य हुआ कि अभी तक पंडिताइन ने उन्हें यह सुझाव दिया क्यों नहीं था. मन की बात उन्होंने पंडिताइन से पूछ ही ली, 'अगर तुम्हारे मन में यह बात थी ही तो कभी मुझसे कही क्यों नहीं...?'

'तुम्हारे स्वभाव से डरती थी...'

काकू को दुःख हुआ. क्या समय के साथ उनका स्वभाव इतना बुरा हो गया था कि बच्चे तो उनसे डरते ही थे, पत्नी भी इस हद तक सहमी कि अपने मन की बात उनसे कहना ही छोड़ दिया था.

काकू ने सप्रयास अपनी आवाज़ को भरसक नर्म कर लिया, 'पर मुझे कोई पसंद तो करता नहीं, फिर भला मुझे ट्यूशन कौन देगा...?'

काकू की बात सुनते ही पंडिताइन का चेहरा एकदम धुला-धुला सा हो गया... आवाज़ में भी चहकन आ गयी, 'अरे देगा क्यों नहीं...? तुम्हारे ज्ञान का मान तो सभी रखते हैं. उस दिन कोने वाले मकान के गुप्ता जी की घरवाली ही कह रही थी... उनका बच्चा गणित में बहुत कमज़ोर है... और तुम्हारे हिसाब-किताब का लोहा तो सभी मानते हैं.'

'उनसे कहां से मुलाक़ात हो गयी तुम्हारी...?' काकू ने अचानक पूछ लिया तो पंडिताइन की चहकन एक झटके से ग़ायब हो गयी, 'अरे ग़ुस्सा क्यों हो रहे... उस दिन बाहर चबूतरे पर झाड़ू लगा रही थी न, तभी गुप्ताइन निकली थी वहां से... स्वभाव की बहुत अच्छी है, सो मुझे देख कर रुक गयी...दो मिनट बात हो गयी थी, बस्स...'

पंडिताइन को यूं डरा देख कर जाने क्यों काकू की हंसी निकल गयी, 'अरे काहे डर रही हो...? कहा न, ग़ुस्सा नहीं हूं...'

ज़माने बाद काकू को हंसता देख मानो पंडिताइन को ज़िंदगी मिल गयी हो, वो फिर उत्साहित हो गयीं, 'जानते हो, पैसे वाले लोग हैं वो... गुप्ताइन कह रही थी कि कोई अच्छा मास्टर मिल जाए उनके गोलू के लिए तो सारे विषय पढ़ाने के लिए चार-पांच हज़ार तक देने को तैयार हैं... उनको ही नहीं, उनकी एक-दो सहेलियां भी अपने बच्चों के लिए अच्छा मास्टर ढूंढ रहीं... सोचो, अगर उनको पसंद आया तो शाम के कुछ घंटों के बदले कितनी आमदनी हो जाएगी और इज्ज़त भी बढ़ेगी...'

एक बच्चे को पढ़ाने के बदले चार-पांच हज़ार की बात सुन कर काकू एकदम अचकचा गये. अचानक मिले इस अप्रत्याशित सुख के पलों में उन्हें समझ ही नहीं आया

ग़ज़लें

मुट्ठी भर चांदनी के लिए... संबंधों के ईंट

केदारनाथ सविता

मुट्ठी भर चांदनी की चाह लिये,
दौड़ता रहा हाथ में अंगार लिये.

ज़िंदगी की सुर्ख नज़रों में,
घूमता रहा कंधे पर अंधकार लिये.

हथकड़ियां टूट गयीं जो फौलाद की थीं,
बैठा रहा शीशे की चूड़ियों पर ऐतबार किये.

समझौतों का युग है यह अपना,
अरसा हो गया वक़्त से तकरार हुए.

जीना मरना है नियति का क्रम,
मगर इस दुखी संसार में कौन बार-बार जिये.

ज़िंदगी को श्मशान बना रहे हैं हम,
आज कितने मज़बूर हो रहे हैं हम.

दूसरों के घर की दीवारों के लिए,
संबंधों के ईंट को ढो रहे हैं हम.

गैरों के चेहरे की शोभा के लिए,
सुंदर ऐनक बनकर टंग रहे हैं हम.

कल तक तूफानों को आंख दिखाते थे,
अब आज स्वयं से डरने लगे हैं हम.

दर्द पराया था अपना हो गया जबसे,
हर घड़ी रो-रो कर हंस रहे हैं हम.

लालडिग्गी, सिंहगढ़ की गली, नयी कॉलोनी, मिर्जापुर-२३१००१ (उ. प्र.)
मो.-९९३५६८५०६८

कि क्या कहें... पर पंडिताइन बड़ी आशा भरी नज़रों से उन्हें ताक रही थी, सो उन्होंने बस सिर हिला कर अपनी स्वीकृति दे दी.

पंडिताइन ख़ुशी से जैसे उछल पड़ीं, 'मैं बस दो मिनट में उन्हें बता कर आती हूं कि तुम मान गये हो...'

काकू को थोड़ी हैरानी हुई. जिसे निपट गंवार समझते आए, वो तो उनसे भी ज़्यादा दूरदर्शी निकली...पहले से ही जैसे सब तय करके बस उनकी मंज़ूरी का इंतज़ार कर रही थी.

कुर्सी से उठ कर काकू बिस्तर पर जाकर लेट गये. अरसे बाद वे दोपहर को यूं लेटे थे. जाने कब उन्हें झपकी आ गयी. नींद के उन क्षणों में काकू ने ख़ुद को बहुत हल्का महसूस किया.

जाने कितनी देर ऐसे ही सोते रहे, पर जब उठे तो सूरज डूबने की कगार पर था. सूरज की सुर्ख-सिंदूरी रंगत देख कर काकू को लगा जैसे सूरज डूब नहीं रहा, बल्कि उनकी तरह अभी-अभी जागा है. एक अंगड़ाई लेकर काकू बिस्तर से उठे और खिड़की पर आकर खड़े हो गये. बाहर सामने के उस घास-विहीन, धूल-अटे मैदान में बच्चे घेरा बना कर फिर समंदर मापने लगे थे...हरा समंदर... गोपीचंदर... बोल मेरी मछली, कित्ता पानी...?

काकू ने क्षणांश मुस्कराते हुए उन बच्चों को देखा और फिर सहसा ही अपने दोनों हाथों को पूरा फैलाकर बच्चों की तरह किलकते हुए कहा...इत्ता पानी...

एम.आई.जी-२९२, कैलाश विहार,
आवास विकास योजना संख्या-एक,
कल्याणपुर, कानपुर-२०८०१७ (उ. प्र.)
मो: : ९८३९९१५५२५
ईमेल : premgupta.mani.knpr@gmail.com

'बांझ मैं नहीं!'

■ रश्मि धवन

जन्म : १९४२; गुजरात.

हिंदी एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति में महाराजा सायाजी राव वि. वि. (बड़ौदा) से एम. ए.; शुरू में नयी दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज़ में अध्यापन. विवाह पश्चात भुबनेश्वर में निवास.

मुख्यत: स्वतंत्र रूप से कविता लेखन, दो कविता संकलन प्रकाशित. श्री चंद्रशेखर रथ के उपन्यास नवजातक का हिंदी में अनुवाद. 'महानदी से मंदाकिनी' संकलन में प्रतिनिधि ओड़िया कविताओं का हिंदी में अनुवाद; अंग्रेज़ी और उड़िया के प्रसिद्ध कवि जयंत महापात्रा के कविता संग्रह 'यद्यपि एक कहानी' (उड़ीसा साहित्य अकादमी २०२१) का हिंदी में अनुवाद.

सम्मान : हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा सम्मानित. भारत सरकार के मानव संसाधन विभाग, 'चिंता ओ चेतना', स्वागतिका, भुवनेश्वर मीडिया फ़ोरम, विश्वमुक्ति राष्ट्रीय हिंदी साहित्य साधना सम्मान आदि संस्थाओं द्वारा सम्मानित.

बांझ शब्द उस सुकुमारी, सलोनी और शालीन-सी युवती के लिए कैसे व्यवहार करने लगे उसके ससुराल के लोग? आस-पड़ोस के लोग, फिर सारी बिरादरी के लोग? लोगों की संवेदना, सहानुभूति इस यांत्रिक युग की आपाधापी में पूर्ण रूप से लुप्त हो चुकी है. दो अक्षरों का शब्द बांझ तीर की तरह मेरे हृदय में जा चुभता.

उसके चेहरे पर सदा एक करुणा मिश्रित मुस्कान रहती जो उसके दिल का दर्द पूर्ण रूप से व्यक्त कर देती. साधारणत: वह अच्छी बातें करती, उसकी उपस्थिति भी चुटकलों एवं रोचक प्रसंगों की चर्चा से भरी रहती. उसका साथ कभी उबाने वाला न था. लोगों के व्यंग्य बाणों के प्रति भी उसने अपना मन कड़ा कर लिया था. वह किसी प्रकार की प्रतिक्रिया न करती. वरना इतने बड़े परिवार में शायद ही कोई दिन गुज़रता जब उसके कानों में वह शब्द न उड़ेला गया हो. बड़े व्यापारी घर की सबसे छोटी बहू होने की वजह से मानों सभी को अधिकार मिल गया था इस विषय में छींटाकसी करने का.

नीरा अपने नाम के ही अनुरूप पवित्र और निर्मल थी. उसके पिता भारतीय सेना में बड़े अफ़सर थे. एक बड़ा भाई, वह भी वायु-सेना से संलग्न था. पापा की लाडली, नाज़ों की पली, मां के शब्दों में लाड़ प्यार से बिगड़ी नीरा, ससुराल में पूरी तरह से अनुशासित एवं संतुलित स्वभाव की बहू मानी जाती थी.

विवाह के पांच वर्ष तक कोई संतान न होने पर चिंतित हो पति ने घर वालों की सलाह से नीरा की पूरी डॉक्टरी जांच करवा ली. जिसके अनुसार नीरा पूर्ण रूप से स्वस्थ थी. 'मां' न बन पाने की कोई वजह डॉक्टर

बता नहीं पाये. उसके पति रवि की जांच के बारे में रवि स्वयं और पूरा परिवार चुप था.

नीरा विवाह के समय केवल अट्ठारह वर्ष की थी. बी. ए. की परीक्षा से पहले ही उसका विवाह कर दिया गया. वह आगे पढ़ न पायी. दुनियादारी की अधिक जानकारी उसे न थी फिर भी वह जानती थी कि संतान न हो पाने की वजह पुरुष भी हो सकता है. बार-बार उसका मन होता, यदि रवि की भी डॉक्टरी जांच करवाई जाती तो शायद इस समस्या का समाधान मिल जाता. उसका पति रवि - नीरा को ख़ूब पसंद करता था. नीरा ही की भांति वह भी ज़िंदादिल इंसान था. दोनों की अच्छी दोस्ती थी. बहुत-सा साहस बटोर कर एक दिन नीरा ने कह ही दिया रवि आप भी डॉक्टरी जांच करवा लेते तो चिंता ही दूर हो जाती. रवि ने हंसकर इस बात को टाल दिया. जैसे कुछ समझा ही न हो. तुम चिंता न करो अभी कहां बूढ़ी हो गयी हो. तुम मां अवश्य बनोगी. समय बीतता गया और नीरा की उदासी भी.

एक सुबह अचानक नीरा की सासू मां के एक सुझाव ने उसे झंझोड़ कर रख दिया. सासू मां ने पुत्र रवि के लिए नयी बहू लाने का प्रस्ताव रखा. यह प्रस्ताव पुत्र के लिए भी चौंकाने वाला था. इस बार वह ढीला न पड़ा, मां को बड़ी शांति और प्रेम से, ख़ूब मज़बूती से कह दिया कि यह किसी हालत में संभव नहीं है. रवि के इस निर्णय ने नीरा के मन में रवि के प्रति प्रेम और विश्वास की नींव को और भी मज़बूत कर दिया. दोनों इस स्थिति पर गंभीरता से विचार करने लगे.

दोनों ने मिलकर ही इस स्थिति का हल भी ढूंढ़ लिया. ''क्यों न एक शिशु गोद ले लिया जाये?'' रवि ने गंभीरता से नीरा के सामने प्रस्ताव रखा. यह बात सुनकर घर में तो खलबली मच गयी. दूसरे भाइयों के बेटे–बेटियां हैं, सब साथ में एक छत के नीचे रहते हैं फिर गोद लेने की क्या ज़रूरत है? सासू मां ने अपना मंतव्य दिया. ज़रूरत थी नीरा को एक शिशु की, यह रवि भली भांति जानता था. उसने अपना निश्चय नहीं बदला. तब परिवार के सब लोगों ने विचार विमर्श कर एक और फ़रमान सुनाया. ''किसी भाई-भाभी का ही बच्चा गोद लिया जाना चाहिए. अपना ख़ून अपना वारिस. उदार मना बड़ी भाभी रमा जो दो बेटों की मां थी संयोग से उस समय गर्भवती थीं, राज़ी हो गयी कि जन्म होते ही ये अपनी तीसरी संतान नीरा और रवि को सौंप देंगी. ख़ैर समय बीत रहा था और हर दिन के साथ शिशु को गोद लेने की नीरा की लालसा भी. यथा समय सुंदर, स्वस्थ, कन्या का जन्म हुआ. बड़े भैया, भाभी जो दो बेटों के अभिभावक थे बिटिया पाकर ख़ूब ख़ुश हुए. बच्चे के जन्म से पहले अपनी तीसरी संतान छोटे भाई को देने का वायदा बिटिया पाने पर उन्हें तोड़ना पड़ा. नीरा की उम्मीद फिर से उदासी में बदल गयी. मां बनने की उसकी चाहत अधूरी ही रह गयी. वह पूरी तरह निराश हो गयी.

रवि उसे ख़ूब समझाता, अभी बहुत-सी संभावनाएं बाक़ी हैं तुम चिंता मत करो. रवि ने आग्रह कर कुछ दिन के लिए नीरा को उसके मायके भेज दिया जिससे उसका मन बहल जाये. वहां जाकर भी नीरा उसी प्रकार चुप-चुप रहती, अकेली बाग में टहलती, मां पापा से भी बस ज़रूरत की बात ही करती. उसकी उदासी देख भाभी ने कहा, यदि रवि राज़ी हो और तुम चाहती हो, उस अवस्था में केवल तुम्हारे लिए मैं एक बच्चे को जन्म दे सकती हूं. भाभी का प्रस्ताव नीरा को भाया पर साथ ही डर भी लगा, कहीं इतिहास दोहराया न जाये. फ़ोन पर तुरंत ही नीरा ने रवि से अपनी भाभी के प्रस्ताव की बात की. रवि को कोई आपत्ति नहीं थी किंतु वह अपनी मां और दोनों भाई भाभियों की राय लेकर ही नीरा को उत्तर देना चाहता था. आने वाली संतान और नीरा को इस विषय में कोई तानेबाजी न सुननी पड़े. एक क्षण के लिए रवि ने सोचा क्यों न इस समय नीरा की अनुपस्थिति में वह अपनी डॉक्टरी जांच करवा ले. आजकल तो मेडिकल साइंस बहुत विकसित हो चुकी है, यदि उसमें कोई कमी है तो उसका इलाज़ भी शुरू कर दे, किंतु उसका पौरुष राजी न था. इसी पशोपेश में वह सारी रात सो न सका कि कहीं उसमें ही कोई कमी न हो, यह सोच-सोच कर वह परेशान था. उसमें हिम्मत न थी कि वह सच का सामना कर पाएगा. अंत में उसने यह विचार मन से निकाल दिया.

नीरा की अनुपस्थिति में वह सबसे बड़ी भाभी रेखा और जीत भाई के साथ सुबह की चाय पीता था. बहुत साहस कर उसने नीरा के प्रस्ताव का ज़िक्र बड़े संकोच से भाभी रेखा एवं जीत भाई से किया. जिस बात का उसे डर था वही हुई. प्रस्ताव सुनते ही जीत भाई की प्रतिक्रिया इस प्रकार थी, ''रवि बाहर का शिशु गोद लेने से तो बेहतर था कि तुम

अपने घर का शिशु गोद लेते?''

''ठीक है भैया, प्रेम भैया और रमा भाभी ने भी वादा किया था कि वे अपनी तीसरी संतान हमें दे देंगे किंतु कन्या रत्न के जन्म के तुरंत बाद उन्होंने अपना इरादा बदल दिया.'' रवि ने साहस कर इतना कह ही दिया.

अच्छा तो यह बात है, अबकी बार मैं तुम्हें वादा करता हूं रेखा और मेरी भावी संतान हम तुम्हें दे देंगे. भावी संतान क्यों? हम विशेष रूप से तुम लोगों के लिए उस संतान की योजना बनाएं तो? भैया आपने तो कह दिया भाभी की सहमति भी तो होनी चाहिए. रवि ने बात को गंभीरता से कहा. रेखा भाभी जो अब तक दोनों भाइयों की बातें चुप हो सुन रही थी संज़ीदगी से बोली, ''रवि तुम्हारे, भैया की बात मैं भी रखूंगी. तुम्हारे और नीरा के लिए एक संतान को जन्म दूंगी. केवल एक बात स्पष्ट करना चाहती हूं मेरी भावी संतान बेटा हो या बेटी वह तुम्हारी ही होगी. न मेरा मन बदलेगा न तुम अपना मन बदलना. इसी शर्त पर मैं इस शिशु को जन्म दूंगी. मेरे तो दो बेटे हैं ही हमें और संतान नहीं चाहिए. केवल तुम्हारे लिए ही तीसरी संतान को जन्म दूंगी.''

रवि ने संहर्ष यह बात स्वीकार ली, नीरा को तुरंत ही फ़ोन पर सारी बात खुलासे से कह दीं. नीरा का उत्तर भी स्वीकृति में था. वह रेखा भाभी की स्पष्टवादिता को सराह रही थी. उसने रेखा भाभी को फ़ोन पर ही हृदय से धन्यवाद दिया, वह बहुत ख़ुश थी.

समय गुज़रने लगा और दो महीने बाद ही रेखा भाभी ने शुभ समाचार दिया. नीरा एवं रवि ख़ूब ख़ुश थे मानो नीरा ही गर्भवती हो. मानव मन भी ख़ूब भावुक होता है. किसी उम्मीद के सहारे वह कितनी जल्दी कितनी आशांवित हो उठता है. वैसे भी नीरा सबसे छोटी बहू थी, बड़ी भाभी रेखा को पहले से ही पसंद करती थी. अब तो पहले से भी अधिक चाहने लगी और प्रेम से उनकी देखभाल करने लगी. कभी उनकी पसंद का खाना बनाती, कभी उन्हें घूमने ले जाती. उनकी छोटी-छोटी ज़रूरतों का ध्यान रखतीं. उसके उत्साह को देख कर घर के कुछ लोग छींटाकसी भी कर देते. पहले शिशु का जन्म तो होने दो फिर देखेंगे क्या होता है? न जाने कैसे यह बात प्राय: सभी परिचितों में ज़ाहिर हो गयी कि वर्मा परिवार की बड़ी बहू अपने सबसे छोटी देवरानी के लिए एक शिशु की योजना बना रही है.

रवि और नीरा मिलकर रेखा भाभी और जीत भाई के साथ नर्सिंग होम गये थे और परिणाम की प्रतीक्षा कर रहे थे. नीरा चाहत भरी निग़ाहों से रेखा भाभी को देख रही थी. वे प्रसव पीड़ा से कष्ट पा रही थीं. क्लांत भाभी का हाथ थामे नीरा कभी उनका सिर सहलाती, कभी पीठ पर हाथ फेरती. उसे समझ नहीं आ रहा था वह कैसे भाभी को कुछ राहत दे सकती है. प्रसव से कुछ समय पहले नर्स आकर भाभी को लेबर रूम ले गयी. अब नीरा के लिए प्रतीक्षा की घड़ियां बिताना और भी कठिन हो रहा था. लगभग आधा घंटा बीत गया. नीरा के लिए एक-एक पल मानों एक युग के समान लंबा हो गया. प्रतीक्षा की घड़ियां कितनी कठिन होती हैं. आज नीरा कितनी अधीर हो रही थी, उसी समय लेबर रूम से नर्स आयी और उसने 'कन्यारत्न' के जन्म की सूचना दी. नीरा को अपने कानों पर विश्वास न हो रहा था, ''क्या हम शिशु को देख सकते हैं?'' नीरा ने नर्स से पूछ ही लिया. नहीं, कुछ समय बाद मां एवं शिशु को कमरे में लाया जाएगा. आप यहां पर ही प्रतीक्षा करें. नीरा रवि की ओर प्रसन्नता एवं उत्सुकता से देख रही थी. तभी उसका ध्यान गया कि जीत गई भी तो उसी कमरे में बैठे हैं, ''भैया आपको बहुत-बहुत मुबारक'' जीत ने कुर्सी से उठकर नीरा के कंधे को थपथपाया. ''नीरा तुम्हें ढेर-सी बधाइयां, ख़ुश रहो.'' नीरा मानो निहाल हो गयी. रवि निरंतर नीरा को निहार रहा था. उस शुभ घड़ी में नीरा की ख़ुशी को रवि के आनंद को कई गुणा बढ़ा दिया.

रेखा भाभी कमरे में आ चुकी थीं और नन्हीं गुड़िया उनकी बगल में सोयी थी. रेखा भाभी ने बड़े प्यार से नीरा की ओर देखा और संकेत से समीप बुलाया, ''नीरा देखो तो गुड़िया कैसी है? गोद में नहीं लोगी क्या?''

नीरा ने लपक कर गुड़िया को उठा लिया. उसके नयनों से अश्रुओं की धार बह चली, उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि सच में वह गुड़िया उसकी है. गुड़िया को वक्ष से लगा उसका मातृत्व हिलोरे लेने लगा. वह मौन थी संतान पाने के सुख को आंखें मूंद कर भोग रही थी. रवि की आंखें नीरा पर टिकी थीं. नीरा को यूं तन्मय देख रवि विभोर था.

नीरा के मन में कुछ देर पहले उठी शंकाएं शांत हो चुकी थीं. उसके हृदयाकाश पर एक चांद-सी गुड़िया सजी

थी. आस-पास की गति-विधियों से पूर्णत: बेख़बर नीरा मानो वात्सल्य रस में आमस्तक डूब गयी थी.

तीन दिन बाद ही रेखा भाभी घर आ गयीं. अब तो नीरा का आनंद और उत्साह दोनों हिलोरे मारने लगे. वह घर के ज़रूरी काम जल्दी-जल्दी निपटा कर रेखा भाभी के कमरे में ही रहती. रेखा भी बड़े प्यार और धैर्य से गुड़िया के छोटे-बड़े काम नीरा को सिखाती. नैपकिन बदलना, दूध पिलाने के बाद कंधे पर रख पीठ थपथपाना जिससे पेट की हवा निकल जाये और शिशु को तकलीफ़ न हो. उठाते समय हमेशा गर्दन के नीचे हाथ रखना, शिशु की गर्दन बहुत नाजुक होती है. एक स्वस्थ शिशु भूख लगने और गीला हो जाने पर ही रोता है वरना सारा दिन प्राय: सोया रहता है. गुड़िया को नहलाना, कपड़े पहनाना आदि रेखा भाभी ने धीरे-धीरे नीरा को सिखा दिया. नीरा को भी जल्दी ही गुड़िया की सब ज़रूरतों की जानकारी हो गयी. उसका आत्म-विश्वास भी जग रहा था. रेखा ने एक सप्ताह में ही गुड़िया को मानो नीरा को सौंप दिया. केवल दूध पिलाने के समय नीरा गुड़िया को रेखा भाभी के कमरे में ले जाती, सुबह से शाम कैसे हो जाती. नीरा को भान न था.

परिवार के बुज़ुर्गों ने निर्णय लिया. चालीसवें की पूजा के दिन ही 'गोद लेने की विधि' भी संपन्न की जाये. अपने बंधु-बांधवों को यथा समय निमंत्रण दे दिये गये. एक भव्य समारोह में नृत्य-गीत के साथ यह विधि संपन्न हुई. साथ ही गुड़िया का नामकरण भी किया गया. नीरा की पसंद के अनुसार गुड़िया का नाम 'चाहत' रखा गया. पूरा घर आनंद में डूब गया था. सब रेखा की प्रशंसा कर रहे थे. इस समय यदि कोई तटस्थ था तो वह थी रमा भाभी. कुछ महिलाएं तो यहां तक टिप्पणीं कर रही थीं, देखा कितना बड़ा दिल है रेखा का. रमा तो कह कर भी अपनी बिटिया नहीं दे पायी. सच में रेखा ने बड़े पुण्य का काम किया.

नीरा मुग्ध थी, गुड़िया को लेकर गोदी में लिये सबके आशीर्वाद बटोर रही थी. नीरा के चेहरे पर न जाने कितने भाव आ कर उलझ रहे थे. वात्सल्य, आनंद, ईश्वर के प्रति कृतज्ञता, रेखा भाभी के अनुपम त्याग के प्रति समर्पण.

रवि ने नीरा का यह रूप पहली बार देखा. मातृत्व का गौरव उसके चेहरे पर अद्वितीय आभा सर्जित कर रहा था. रवि की मानसिकता नीरा से भिन्न थी. उसके मन में अचानक एक भाव उभरा — क्या सच में वे दोनों संतान जन्म के योग्य नहीं थे? उसका पौरुष उसे कचोट रहा था. क्यों उसने अपने टेस्ट नहीं कराये? हो सकता है कोई कमी मुझमें ही हो और इलाज कराने से ठीक हो सकती थी. आजकल तो मेडिकल साइंस ने बहुत प्रगति कर ली है. रवि सुबह उठा और किसी से कुछ कहे बिना ही अपने टेस्ट कराने चला गया. यथा समय रिपोर्ट आयी. रवि वैसे तो ठीक था किंतु उसके स्पर्म कॉउंट कुछ कम थे. डॉक्टर ने बताया कि आजकल बहुत अच्छी दवाइयां निकल आयी हैं, जिनके लेने से 'स्पर्म कॉउंट' बढ़ सकता है और स्वाभाविक रूप से पिता बना जा सकता है. आज की रात वो सो न पाया. अब उसने नीरा से कुछ कहना चाहा, ''नीरा डॉक्टर कह रहा है कि इलाज़ करने पर मेरा 'स्पर्म कॉउटं' बढ़ जाने पर हम स्वाभाविक रूप से माता पिता बन सकते हैं, कोशिश करने में क्या हर्ज़ हैं?''

''नहीं रवि अब बहुत देर हो चुकी है, पहले पांच साल मैंने जो सहा है, जो विशेषण मेरे लिए व्यवहार किये गये हैं उनकी पीड़ा मैं भूली नहीं हूं. रवि तुमने अब ऐसा सोचा भी कैसे? रेखा भाभी के त्याग का मूल्य हम ऐसे चुकाएंगे? मान लो हमारी अपनी संतान हो भी जाती है, क्या हम चाहत के साथ न्याय कर पाएंगे? एक बात और भी गंभीर है, कमी तुममें थी यह सत्य लोग जाने यह मैं कभी-भी न चाहूंगी. तुम गर्व से अपने पौरुष के साथ जीओ इसमें मुझे भी मान ही होगा.

''मुझे क्षमा करना रवि मैं तुम्हारे विचार से कतई सहमत नहीं हूं.'' कह नीरा, गुड़िया-सी चाहत को सीने से लगा कमरे के बाहर चली गयी. मां बनने के बाद उसका क़द और भी ऊंचा हो गया.

४२, वी. आय. पी. कॉलोनी,
आय. आर. सी. विलेज,
भुवनेश्वर-७५१०१५, ओड़ीसा.
मो. ९४३७४००१७८

मन की ज़मीन

■ विजय सिंह चौहान

शिक्षा : एम. कॉम., एल. एल. बी., बी. जे.कॉम, (पत्रकारिता)
साहित्यक सफ़र / प्रकाशन : पत्रकार के रूप में दैनिक भास्कर, नवभारत, शनिवार दर्पण में सेवाएं प्रदान.
राजस्थान, पत्रिका, नवभारत, दैनिक भास्कर, नई दुनिया, सुबह सवेरे, पत्रिका न्यूज टुडे, स्वदेश, इंदौर समाचार, चेतना, प्रभात किरण, डेली हिंदी मिलाप, हरियाणा प्रदीप, साहित्य जगप्रेरणा, वीणा, समावर्तन, विश्वगाथा, संगिनी, अविराम साहित्यकी, आदिज्ञान, स्मेश, चिकीर्षा, आदिज्ञान, समकालीन त्रिवेणी, प्रस्ताव, शब्दाहुति, उर्वशी, क्षितिज, राजपूत वाणी में सतत रचनाओं का प्रकाशन. विधि पुस्तकों में विधि रिपोर्ट्स, विधि आलेख व संपादन.
अनाथ जीवन का दर्द, साझा लघुकथा संग्रह में, सहभागिता. आकाशवाणी इंदौर से लघुकथाओं तथा विधि विषयों पर सतत वार्ता का प्रसारण.
पदेन सदस्य : प्रदेश मंत्री - म.प्र. हिंदी साहित्य भारती,
संयोजक : पाठक मंच, इंदौर
उपाध्यक्ष : विचार प्रवाह साहित्य मंच, इंदौर
सदस्य : क्षितिज
सम्मान : डॉ. एस. एन. तिवारी सम्मान २०१९
संप्रति : अधिवक्ता, म. प्र. उच्च न्यायालय, इंदौर

'...कहां जाओगे?'

'बड़े अस्पताल जाना है.'

...आइए, बस रास्ते की सवारी मिल जाए, यह कहते हुए सहारे के लिए खनकती चूड़ियों वाले हाथ सहारा बने. एक-एक करके सवारी आती रही, जाती रही और ज़माने की भीड़ को चीरते हुए आख़िर बाबूजी का बड़ा अस्पताल आ ही गया.

... क्या नाम बताया बेटा!

बाबूजी, मुझे बेटा नहीं 'बिटिया' कहिए और मेरा नाम है, सपना. चुटकी लेते हुए, क्यों बाबू जी लगता है ना कुछ अपना-सा.

उदास सांझ में से मुस्कुराते हुए बाबूजी ने चुटकी भर हामी भरी.

लीजिए बाबूजी आ गया, अस्पताल. वैसे क्या तकलीफ़ हो रही है, जो इतनी दूर आना पड़ा आपको? चिंता की बूंदें चेहरे पर उभर आयीं... कुछ नहीं बेटा! बुढ़ापा अपने आप में तकलीफ़ है, कुछ ना कुछ, होते रहता है, चाहे जब जी घबराने लगता, कुछ नहीं तो रक्तचाप ज्वार भाटे की तरह उफान मारता. कभी-कभी भविष्य को लेकर अंधियारा–सा छाने लगता. बीमारियों का पहाड़ बताते हुए बाबूजी के कई शब्द लुढ़कते तो कुछ अधकचरे नज़र आए. जैसे ही बाबूजी ने ऑटो रिक्शा से पहला डगमगाता क़दम ज़मीन पर रखा कि पुनः सपना ने दूसरा हाथ बढ़ा दिया, पकड़ लीजिए बाबू जी! मैं भी आपकी बेटी जैसी हूं. सहारा पाकर, बाबूजी को मानो 'मन की ज़मीन' मिल गयी. पर्ची कटाने से लेकर डॉक्टर से अंग्रेज़ी में पूछताछ कर दवा की सारी पुड़ियाओं पर सपना ने यह लिखवा लिया कि दवा कब-कब लेना है और कैसे

लेना है.

घर लौटते वक़्त बाबू जी ने बैंक से पेंशन निकाली और उधड़ी सडक से अपने जीवन की तुलना करने लगे. 'बाबू जी, आपके कितने बच्चे हैं?' हॉर्न बजाते हुए सपना ने पूछा.

'बिटिया चार बेटे-बहुए हैं... अरे वाह! चार 'कलदार' सपना ने फिर चुटकी ली. चार कलदार सुनकर बाबूजी के खिलखिलाते चेहरे पर अनायास ही मायूसी की छांव पैर पसारने लगी. रिक्शा को चाय की दुकान पर लगाते हुए कड़क आवाज़ में सपना ने कहा, अरे भाई मसालेदार चाय लाना आज बाबू जी आए हैं... और हां, सुन अदरक भी कूट देना. इस फ़रमाइश के साथ चाय का रंग और ख़ुशबू देखते ही बनती थी. गरम चाय के कुल्हड़ से उठते धुएं और मिट्टी की महक को गटकते हुए बाबू जी के शब्द मुखर हुए, कहने को तो चार बेटे हैं मगर दिशाओं के मान से अपनी-अपनी दुनिया में मस्त हैं, वैसे मेरी दुनिया तो दो साल पहले मुझे तन्हा करके चली गयी. मुंह से निकली भाप मोटे चश्मे तक आते-आते जमने लगी. बटुए में रुपए के पहले लगा मुस्कुराता फ़ोटो दिखाते हुए बाबूजी की आंख को सजल होने में पल भर भी न लगा.

बाबूजी बटुए में क्रम से जमे रुपयों पर अंगुलियां फेर रहे थे तभी सपना ने अधिकार जमाते हुए कहा यह क्या कर रहे हैं? बाबू जी चाय की चाहत मेरी थी इसलिए पैसे भी मैं दूंगी. अधिकार ने अपना सिक्का जमा दिया तभी सिलवटों में जकड़ा २० का नोट हवा पाते ही खिल उठा. रास्ते भर बाबूजी के भाव पढ़ते-पढ़ते बाबूजी को मंदिर के दर्शन कराए तो कभी शहर के अतिक्रमण से मुक्त सड़कों पर बेबाक़ी से बात की. अस्पताल से लौटते समय आज सपना ने न तो रिक्शा में सवारी बिठाई और ना किसी की पुकार लगाई. गरमा-गरम मूंगफली को फोड़-फोड़ कर खिलाती सपना की आंख कई बार छलछलायी भी, मगर पलकों के पीछे बांध ने आंसुओं को बांधे रखा.

'...बिटिया घर पर कौन-कौन है,' बाबूजी के सवाल ने पलकों के पीछे छुपे सायफ़न को खोल दिया. गरम मूंगफली और खारे आंसुओं का सम्मिश्रण गुलाबी ठंड को गरमाने लगा. भरा-पूरा परिवार था, एक समय अब मैं और

मेरी धन्नो साथ रहते हैं. 'धन्नो' सजी संवरी लाल गुलाबी ऑटो रिक्शा जिसमें श्रृंगार से लेकर संगीत तक मन की गठरी को बांधे रखता है, माता-पिता की याद आती है तो आप जैसे बुज़ुर्गों की सेवा कर अपनी ख़ुशियां बांट लेती हूं. काफ़ी समय हो गया, चलिए बाबूजी घर छोड़ देती हूं, कहते हुए सपना ने गाड़ी बढ़ा दी. उधड़ी सड़क के गड्ढों से बचते, बचाते रास्ता काटे नहीं कट रहा था कि तभी ७० के दशक के गीत बाबूजी की स्मृति पटल पर छा गए. आप चिंता ना कीजिए आज से आपके चार कलदार और यह एक खोटी चवन्नी भी है, इस प्रकार आपके कुल पांच बच्चे हैं. जब मन करें फ़ोन कर देना, सपना हाजिर हो जायेगी.

सपना का अपनापन देखकर बाबूजी का मन भीग गया, बाबूजी कितने ख़ुश हुए थे, जश्न मनाया था जब बेटे हुए थे मगर आज सपना को पाकर बाबूजी के जीवन में नया सवेरा नवकिरण के साथ मुस्कुराने लगा.

३०, अधिवक्ता चेंबर,
मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय परिसर, इंदौर
मो. ९६९१५५५३६५
ई-मेल : vijaysinghchouhan22@gmail.com

मैं आगे बढ़ गयी हूं

■ डॉ. जयवंती डिमरी

सेवानिवृत्त प्रोफेसर अंग्रेज़ी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला. फैलो उच्च शिक्षा अध्ययन संस्थान, शिमला. हिंदी तथा अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में लेखन तथा अनुवाद में सक्रिय. मुख्य विधा कहानी लेखन जिसके लिए २००२ में किताबघर के आर्यस्मृति सम्मान से सम्मानित. अब तक हिंदी में तीन कहानी संग्रह, तथा एक उपन्यास सुरजू के नाम (भारतीय ज्ञानपीठ २००६, द्वितीय संस्करण २०१०) प्रकाशित. इस उपन्यास का स्वनुवादित संस्करण 'दु सुरजू विद लव'ओरियंट ब्लैक स्वान द्वारा २०१७ में प्रकाशित. उपन्यास व कहानियों पर कई शोध लेख तथा कई विश्वविद्यालयों में शोध कार्य. यह उपन्यास रूस के निजनी विश्वविद्यालय के स्नातक पाठ्यक्रम में शामिल है. 'द इनर आई' कहानी हिमाचल प्रदेश शिमला विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विषय के स्नातक पाठ्यक्रम में सम्मिलित. एक अन्य कहानी 'सांप से कछुए तक का सफ़र' मैसूर के स्नातक पाठ्यक्रम में कई वर्षों तक सम्मिलित रही.

"आई हैव मूव्ड ऑन. आई हैव टू.''

''मैं आगे बढ़ गयी हूं. मुझे आगे बढ़ना ही है.''

मुझे चुप देख उसने ख़ुद ही बातचीत की पहल की है.

''बृज के एडमीशन का भी देखना होगा. मिड सैशन में एडमीशन मिलना भी मुश्किल होगा. यह बात मुझसे ज़्यादा उसने ख़ुद से कही.

मिड सैशन. इसका हमसफ़र भी तो इसे ज़िंदगी के मिड सैशन में अकेला छोड़ इस दुनिया से चल बसा है. बृज का एडमीशन ही क्यों बहुत-सी बातों में मुश्किल होगी. लेकिन जैसा वह कह रही है वह आगे बढ़ चुकी है. विदेश से स्वदेश में आकर भौगोलिक स्तर पर तो मूव ऑन—आगे बढ़ ही चुकी है. देर सवेर सभी को मूव ऑन करना पड़ता है. ज़िंदगी किसी के जाने से नहीं थमती, हां बदल ज़रूर जाती है. फिर समय भी बदल रहा है और बदलना भी चाहिए. दुःख मनाने, स्यापा करने की सारी ज़िम्मेदारी औरत पर ही क्यों हो?

''आई हैव मूव्ड ऑन.'' कदाचित यह अंग्रेजी भाषा का एक प्रचलित, आम बोलचाल का जुमला है, जिसे विदेशों में रहते देसियों ने भी जाने अनजाने अपनी भाषा में शामिल कर लिया है. विनीता ने भी तो यही कहा था — ''आई हैव मूव्ड ऑन.''

यह बात विनीता ने मुझसे अलग-अलग तरीक़े से तीन बार कही थी. ''आई हैव मूव्ड ऑन.'' मेरे पास दूसरा ऑप्शन नहीं था और आख़िर में 'बाइगौन्स आर बाइगौन्स.' जो बीत गयी वो बात गयी. किसी बात को बार-बार दोहराना आपका अपने कथन में विश्वास की कमी व्यक्त करता है. मेरे बिना पूछे ही उसने अपने उस अधूरे मिड सैशन टूटे रिश्ते की कहानी बयान कर दी थी. उस रिश्ते से जुड़े अगर, मगर, किंतु, परंतु — वह घटनाक्रम और उससे जुड़ी छोटी–बड़ी बातें दस साल बाद भी उसके मन में जस की

तस मौजूद थीं और यह सब वह एक अजनबी को क्यों बता रही थी? किसी अजनबी से अपने किसी अहम पूर्व निर्णय को साझा करना एक प्रकार से उसकी सहमति चाहना है. इससे उस व्यक्ति का अपने निर्णय के संबंध में संदेह ही प्रकट होता है.

यह तो विनीता भी जानती थी कि उन बीती बातों को याद करने या उन्हें किसी से साझा करने का अब कोई मतलब नहीं था. जाहिर है यह सब किसी से कह कर वह अपने दिल का बोझ हल्का करना चाहती थी. अपने पति से अलग होने के बाद उसकी देसी बिरादरी की महिलाओं ने उसके कथनानुसार उससे दूरी बना ली थी. उनके लिए वह एक संभावित ख़तरा बन गयी थी. यदि वह अपने पति को छोड़ सकती थी तो किसी के पति को अपना भी सकती थी.

विनीता से पूछने का मन हुआ था, कि आगे कौन बढ़ा है — तुम्हारा दिल, दिमाग़ या यह भौतिक काया, लेकिन फिर पूछा नहीं. प्रश्न बहुत दार्शनिक लगा. उस परिवेश में कौओं के मध्य हंस सदृश्य एकदम बेमेल. यों भी विदेशों में इस बात का विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि किसी के व्यक्तिगत जीवन में किसी प्रकार की ताका-झांकी या हस्तक्षेप न किया जाए. वहां लोग आपके जख़्म कुरेदते नहीं हैं, यह बात अलग है कि वे उन पर मरहम भी नहीं लगाते. आपकी दस साल की शादी क्यों टूट गयी या आपने दूसरी शादी कब की, क्योंकि — वे ऐसे व्यक्तिगत प्रश्न नहीं पूछते और न ही इस संबंध में कोई प्रतिक्रिया देते हैं. यह बात आपको अखर सकती है, आख़िर हैं तो आप भी इंसान ही. और सच पूछा जाए तो यह प्रतिक्रिया न देना भी एक प्रकार की प्रतिक्रिया ही है.

विनीता से इस साझेदारी का सिलसिला एक पार्टी में एक छोटी-सी घटना से हुआ था. प्रवासी भारतीयों की उस पार्टी में मैं विनीता की मेहमान बन कर गयी थी जहां शहर के एक जाने माने डॉक्टर ने मुझे पहचान लिया था. पार्टी ख़त्म होने के बाद कार में बैठते ही विनीता ने पूछा, ''तुम उन्हें कैसे जानती हो?'' ''जानती नहीं हूं. मेरी शादी इससे होते-होते रह गयी थी.'' मैंने हंस कर जवाब दिया. ''हॉउ सैड.'' यह यहां के लीडिंग कार्डियोलोज़िस्ट हैं. तुमने देखा नहीं पार्टी में सब लोग उन्हें कितनी इज़्ज़त दे रहे थे. ही हैज़ ए फ्लरिशिंग प्रैक्टिस. इनकी यहां बहुत अच्छी प्रैक्टिस चलती है. बाइ द वे, तुम्हारी डॉक्टर साहब से शादी क्यों नहीं हो पायी? एक व्यक्तिगत सवाल कर रही हूं अगर तुम बुरा न मानो.

''पापा ने मना कर दिया था. अमेरिका में पला और पढ़ा डॉक्टर एक साधारण परिवार की एक साधारण लड़की से शादी क्यों करना चाहता है, यह बात पापा की समझ से बाहर थी. उन्हें दाल में कुछ काला नज़र आ रहा था. उन्हें डर था कहीं अमेरिका में इसने पहले शादी न की हो और वह टूट गयी हो इसलिए लौट के बुद्धू घर को आये हों और इंडिया की किसी सीधी सादी लड़की के साथ घर बसाने का इरादा हो.'' यों डॉक्टर के बारे में जानने की मुझे भी उत्सुकता थी. पार्टी में उसे ख़ास तरजीह मिल रही थी. ''हैट्स ऑफ़ टु युअर फादर. उनकी सोच की तारीफ़ करनी पड़ेगी. वह कितने दूरदर्शी थे. बहुत ठीक से तो पता नहीं लेकिन शायद यह किसी कोरियन अमेरिकन लड़की के साथ रिलेशनशिप में था. काश मेरे पापा ने भी तुम्हारे पापा जैसी समझदारी दिखाई होती. उन्होंने तो सुंदर, स्मार्ट, अमेरिका में नौकरी कर रहा अपनी बिरादरी का लड़का देखा और ख़ुश हो गये. चट मंगनी और पट ब्याह. हो गयी हमारी शादी.'' ''तो क्या उसका कोई अफ़ेयर था?'' मैंने उसे बीच में ही टोका. ''अफ़ेयर!'' वह एक खिल्ली उड़ाती हंसी हंसी.'' अफ़ेयर करने के लिए भी तो एक सैन्सटिविटी होनी चाहिए. वह तो इतना सेल्फ़ सैंटर्ड था कि उसे अपने अलावा कुछ नज़र ही नहीं आता था. इतना भाव शून्य आदमी माइ गॉड. वह कहते हैं न कि, माइ एंड माइसेल्फ़—मैं, मेरा और मेरे लिए. इस मैं की हवा से फूला हुआ गुब्बारा, जिसकी हवा एक छोटी-सी पिन से एक सेकंड में निकल जाए. काम करता है तो सिर्फ़ वह, थकता है तो सिर्फ़ वह, खाना बनेगा तो उसकी पंसद का. दूसरे की तारीफ़ के लिए तो उसकी डिक्शनरी में कोई शब्द था ही नहीं. अपने शौक़ पूरे करने के लिए उसके पास पैसे की कमी न थी लेकिन मेरे ख़र्चे का उसे एक एक सैंट का हिसाब चाहिए था. बीस डॉलर भी देता था, तो एक एक डॉलर का हिसाब मांगता था. ऐसे इंसान के साथ रहने में मुझे घुटन महसूस होने लगी थी. मेरे सपनों और उम्मीदों पर जैसे किसी ने काली स्याही पोत दी हो. ज़िंदगी बेरंग, बेरौनक हो गयी.'' उसकी वह मुखमुद्रा-वहां एक परेशानी और याचना का मिला-जुला भाव था.

''सोचा था यू. एस. में क्वालिटी लाइफ होगी. घूमेंगे, फिरेंगे लेकिन मैं तो यहां आकर अपनी देसी बिरादरी में सेकेंड ग्रेड—दोयम दर्ज़े की सिटिज़न हो गयी थी. सनी के पैदा होने के बाद तो परेशानियां बढ़ती ही गयीं.''

''सनी? क्या वह तुम्हारी पहली शादी से...?''

''हां, सनी और रेयान हाफ ब्रदर्स हैं. बट दे गेट अलॉग सो वैल. उन दोनों की आपस में बड़ी अच्छी बांड्रिंग है. तुमने देखा है न? अब तुम्हें कहां पता चला कि वो हाफ़ ब्रदर्स हैं'' उसकी आवाज़ और चेहरे पर वही एक आतुर प्रार्थना भाव था. अपनी बात का समर्थन चाहने की वही उत्कट अभिलाषा. उसके कान मेरी हां सुनने के लिए बेताबी से प्रतीक्षारत् थे.

मैं चुप थी. बहुत-सी बातें अब मेरी समझ में आ रही थीं, जिन्हें अमेरिकी सभ्यता के मानक तौर तरीक़े समझ मैंने नज़रअंदाज कर दिया था. एक पेइंग गेस्ट होने के नाते खाने की मेज पर ही विनीता और उसके पति से औपचारिक बातचीत हो पाती थी. इन दोनों भाइयों की उम्र और शक्ल का अंतर स्पष्ट था. ऑफ़िस से घर आने के बाद विनीता का बार-बार सनी, सनी आवाज़ देना, सनी का कोई जवाब न देना, सारे दिन अपने कमरे में बंद रहना, सबके चले जाने के बाद किचन में आकर फ्रिज़ से खाना निकाल माइक्रोवेव में गरम करना—थोड़ी देर की खटर-पटर और वापिस अपने कमरे में चले जाना. उसके इस तटस्थ व्यवहार को मैं अमरीकी जीवन परिपाटी का हिस्सा समझ बैठी थी.

''विक्रम से तुम्हारी इस शादी के समय सनी लगभग आठ साल का रहा होगा. इस रिलेशनशिप को एक्सैप्ट—स्वीकारने में उसे कुछ परेशानी नहीं हुई? मैंने अपनी बात को यथासंभव शालीन ढंग से कहने की कोशिश की. एक आठ साल के बच्चे की मानसिक स्थिति और भावनात्मक उथल-पुथल की स्थिति को व्यक्त करने के लिए जब उसके बाप के ज़िंदा होते हुए कोई दूसरा व्यक्ति उस रिश्ते पर काबिज हो जाए, परेशानी शब्द बहुत ही छोटा, छिछोरा शब्द था.

''एम. के. से अलग होने के पांच साल बाद तक मैं सिंगल पैरेंट थी. (रिश्ते टूटने के साथ ही शब्द भी टूट कर संक्षेपाक्षरों में सिमट गये थे) एम. के. थोड़ा बहुत ख़र्चा देता था लेकिन वह काफ़ी नहीं था. मैंने छुटपुट कई पार्ट टाइम काम किये लेकिन यह सब आसान नहीं था. यहां विदेश में हमारा कोई पारिवारिक या सामाजिक सपोर्ट सिस्टम नहीं होता. विक्रम से शादी मैंने सिर्फ़ अपने लिए नहीं सनी के लिए भी की. अच्छी ज़िंदगी जीने के लिए पैसा और एक सामाजिक सुरक्षा बहुत ज़रूरी है जो दोनों ही चीज़ें हमें विक्रम से मिलीं. आज हमारे पास अच्छा घर है, सुख सुविधाएं हैं, सनी यूनिवर्सिटी में पढ़ रहा है. तुम्हें पता है यू. एस. में यूनिवर्सिटी एज़ुकेशन का ख़र्चा उठाना एक आम आदमी की जेब की पहुंच के बाहर है.''

मुझे चुप देखकर उसने सोचा होगा मैं उसकी बात से सहमत नहीं थी. मैं विक्रम और सनी—एक सौतेले बाप और सौतेले बेटे के आपसी संबंधों के बारे में सोच रही थी, जब कि सौतेले बाप का अपना सगा बेटा भी घर में मौजूद था. सौतेले भाई-बहन तो बहुत देखने सुनने को मिलेंगे लेकिन हाफ़ ब्रदर बहुत कम. हिंदी 'भांजा' में तो ख़ैर हाफ़ ब्रदर का पर्याय शब्द, है ही नहीं. सहोदर—नहीं. सहोदर शब्द सगे भाइयों के लिए प्रयुक्त शब्द है. मेरी स्टेप और हाफ़ ब्रदर की उधेड़बुन से बेख़बर विनीता अपनी दूसरी शादी का औचित्य बनाम फ़ायदे बता रही थी.

''मेरी इस रिलेशनशिप ने सनी को स्टेबिलिटी, स्थायित्व दिया वरना बेचारा मेरे साथ ट्रेन और बसों में घूमता फिरता था. कई बार मैंने उसे पार्क में अकेले छोड़ा है. फूड कार्ट का सस्ता खाना खाकर दिन गुज़ारे हैं. यह शादी हमने सनी की अनुमति और सहमति से उसे विश्वास में लेकर की है. सनी के कारण मेरे लिए दूसरी शादी का निर्णय लेना आसान नहीं था. विक्रम का कोई बैगेज़, कोई पुराना रिश्ता नहीं था. लेकिन मेरा एक पास्ट था. एम. के. इसी शहर में था. सनी अपने फ़ादर से बहुत अटैच्ड था. (था या है मैंने पूछना चाहा पर पूछा नहीं) विक्रम बहुत ही समझदार और सुलझा हुआ इंसान है. शादी से पहले एक साल तक हमने सनी को मानसिक रूप से इस नये रिश्ते के लिए तैयार किया. सनी के साथ विक्रम ने क्वालिटी टाइम बिताया. जब इन दोनों की आपस में अच्छी बॉडिंग हो गयी, तभी हमने शादी की. सनी के हितों के साथ हमने इस रिश्ते में कोई समझौता नहीं किया.

''तुम्हारा पहला पति, एम. के. क्या उसकी शादी हो गयी? सनी की कस्टगी लेने के लिए उसने कोई पहल नहीं की?''

''पहल! माई फुट. वह तो पहले ही शादी कर चुका

था. उसकी बीबी ने मना कर दिया होगा. सनी को अपने साथ रखना मेरी पहली प्राथमिकता थी.''

बहुत जल्दी ही मुझे सनी के साथ अकेले समय बिताने का मौक़ा मिल गया. विनीता और विक्रम को एक बिज़नैस ट्रिप पर टॉउन से बाहर जाना पड़ा. अज़ीब दिनचर्या थी इन लोगों की. और किसी अमेरिकी आदत को इन्होंने अपनाया हो न हो लेकिन खाने के मामले में पूरे अमेरिकी हो गये थे. एक बड़ा कुकर भर चावल पका देते और पूरा हफ़्ता सुबह शाम माइक्रोवेव में उसे गरम कर खाते रहते. कभी उसमें काटेज़ चीज डाल रहे हैं, कभी चिली सॉस, टोमेटो सॉस, सोया सॉस, तो कभी उबले आलू या अंडे. मुझसे भी एकाध बार मेरे अमरीकी सहयोगियों ने पूछा था, ''क्या यह सच है तुम लोग बासी खाना नहीं खाते?'' मेरी 'हां' सुनकर भी वह विश्वास नहीं कर पा रहे थे. तुम भी दिन में दो बार खाना बनाती हो?'' फिर से मेरी 'हां' सुनकर भी वह विश्वास नहीं कर पाते थे.

उस दिन विशुद्ध भारतीय स्टाइल में अरहर की दाल और चावल बनाने का मन हुआ. 'सनी मैं अरहर की दाल और चावल बना रही हूं. क्या तुम्हें पसंद है?'

''हां आंटी. आई लव इट. पहले ममा यलो दाल बहुत बनाती थी.'' मैंने नहीं पूछा अब क्यों नहीं बनाती.

''थोड़ी मिर्च डाल दूं? उससे दाल में रंग अच्छा आ जाता है.'' क्या हींग—मेरा मतलब एफ़ाटिडा होगी? हींग के तड़के के बिना अरहर की दाल में मज़ा नहीं आता.

''होनी चाहिए. पैन्ट्री में देखता हूं.''

वह थोड़ी देर में हींग और गरम मसाले लेकर आ गया.

''आई लाइक स्पाइसी फ़ूड. मुझे स्पाइसी खाना पसंद है. इन लोगों को स्पाइसी फ़ूड पसंद नहीं है.''

'इन लोगों. वह 'इन लोगों' में शामिल नहीं था. विनीता की दूसरी शादी के दस साल बाद भी वह इन लोगों में शामिल नहीं था. वह बड़े उत्साह से खाना बनाने में मेरी मदद कर रहा था. मुझे बड़ी शर्मिंदगी महसूस हुई. यह इतना मिलनसार लड़का. मैंने अपनी ओर से उससे बात करने की कभी पहल ही नहीं की. रयान से तो अक्सर बात हो जाती थी. ग्रैनी, ग्रैनी कर वह मेरे कमरे में आ जाता था.

तभी प्रेशर कुकर और मेरे मोबाइल की घंटी साथ-साथ बजी. गैस धीमी कर मैंने मोबाइल उठाया. विनीता का फ़ोन था. अपने काम के सिलसिले में उन्हें एक हफ़्ता वहां और रुकना पड़ रहा था. 'सनी कैसा है?' उसने पूछा. 'अच्छा है. यहीं पर है, लो बात कर लो.' और मैंने मोबाइल सनी के हाथ में दे दिया.

कुछ ही देर में सनी और विनीता में किसी बात को लेकर बहस हो गयी थी. मोबाइल मेरे हाथ में देकर वह तेज़ क़दमों से सीढ़ियां चढ़ता हुआ अपने कमरे में चला गया. दरवाज़ा बंद होने की आवाज़ मेरे कानों से ज़्यादा दिल में खटकी. बहुत अफ़सोस हुआ. बेकार ही मैंने मोबाइल सनी के हाथ में देकर मां बेटे के बीच में तल्खी पैदा की. कुछ देर पहले के ख़ुशनुमा माहौल में सन्नाटा छा गया था और तभी मेरे मोबाइल की दुबारा घंटी बजी.

''दीदी मैं विक्रम बोल रहा हूं. सनी अगर नाइट स्टे के लिए बाहर जाए तो उससे परमीशन लेटर ले लेना.

''परमीशन लेटर? मैं ठीक से समझी नहीं.''

''वह कहां जा रहा है, कितने दिन के लिए जा रहा है और जहां वह जा रहा है, उनका कांटेक्ट नंबर सारे डिटेल्स उस लेटर में होने चाहिए.''

इससे पहले कि मैं कुछ कहती सनी के कमरे का दरवाज़ा खुला और उसने गैलरी की रेलिंग से नीचे झांककर ऊंची आवाज़ में कहा — ''उनसे कह दें मैं कहीं नहीं जा रहा हूं.'' मैं हतप्रभ थी. विक्रम की आवाज़ रुकी वह कड़क और बेरुख़ी मेरे लिए नयी थी. सनी के यह दो विपरीत रूप किचन में मेरी मदद करता सनी और विनीता का फ़ोन आने के बाद का सनी—दोनों ही मेरे लिए नये थे.

अरहर की दाल पकने की सोंधी महक आ रही थी, लेकिन माहौल की तल्खी के सामने वह महक फीकी पड़ गयी थी. इतने शौक़ से दाल चावल बनाया था. मैंने झिझकते हुए सनी के कमरे का दरवाज़ा खटखटाया. आज पहली बार मैं सीढ़ियां चढ़ कर ऊपर गयी थी. ''आंटी अंदर आइए, प्लीज़.''

''खाना बन गया है. तुम्हें बुलाने आयी हूं. तुम चाहो तो तुम्हारी प्लेट यहीं तुम्हारे कमरे में दे दूं? अरहर की दाल गरम खाने में ही अच्छी लगती है. वह क्या कहते हैं – बीमिंग हॉट.''

''मैं नीचे आता हूं. आप पहले अंदर तो आइए.''

(शेष भाग पेज ६० पर देखें...)

परदा री-लोडेड

■ डॉ. निधि अग्रवाल

जन्म : गाजियाबाद (उ. प्र.). वर्तमान में चिकित्सक के रूप में झांसी में कार्यरत.
'वीणा', 'कथाक्रम', 'दोआबा', 'ककसाड','अहा ज़िंदगी', 'पाखी', 'लमही', 'कला वसुधा', 'परिकथा' आदि पत्रिकाओं में कहानियों/कविताओं का प्रकाशन. स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं तथा डिज़िटल मीडिया में रचनाओं का नियमित प्रकाशन. प्रथम कहानी संग्रह प्रकाशनाधीन. कविताएं, कहानियां और सामाजिक विषयों पर ब्लॉग आदि का लेखन. आकाशवाणी के छतरपुर (मध्यप्रदेश) केंद्र से रचनाओं का नियमित पाठ.

अलार्म की आवाज़ से आधी नींद में उठी थी. पापा कहते हैं — 'अर्ली टू बेड एंड अर्ली टू राइज...'

लेकिन अर्ली भी सोना चाहो तो जाने कब दो बज जाते हैं. नींद पूरी हो तो हो कैसे भला! मोबाइल उठा, वह वॉशरूम की ओर बढ़ गयी. ब्रश करते हुए देखा कि पचास मिस्ड कॉल हैं. मन में खटका हुआ पर नंबर अन-नोन होने से अधिक ध्यान नहीं दिया. मुंह धोकर डाइनिंग में चली आयी. सामने से पापा अख़बार लिये चले आ रहे थे. 'गुड-मॉर्निंग' कहते हुए पापा के गले में बाहें डालती, उन पर झूल गयी.

'संडे को जल्दी उठ गयी!' चाय की ट्रे मेज़ पर रखते हुए मम्मी ने आश्चर्य से कहा — 'हां, अलार्म बंद करना भूल गयी थी.' वह जम्हाई लेते हुए बोली और मम्मी के गाल पर एक पुच्ची दे दी. मम्मी को यह लिपटना-चिपटना पसंद नहीं.

'कब बड़ी होगी?' वे गाल पोंछती, झूठा गुस्सा दिखाते हुए बोलीं.

मम्मी को चिढ़ाने में उसे मजा आता है. वह कुर्सी पर आलथी-पालथी मारकर बैठ गयी और बिस्कुट कुतरने लगी. फ़ोन खोल ही रही थी जब उदित से नज़र टकरायी. वह सीढ़ियों के पास खड़ा, उसे आने का इशारा कर रहा था.

'क्या है?' वह खीझकर चिल्लायी. उदित ने ग़ुस्से से उसे घूरा. चुप रहने का इशारा किया. मम्मी-पापा ने पीछे मुड़कर देखा.

'छुट्टी के दिन दोनों भाई-बहन देखो कैसे जल्दी उठ गये. नाश्ता बना दूं क्या?' मम्मी ने पूछा.

'नहीं, मैं थोड़ी देर छत पर टहलने जा रहा हूं. तू भी चल मोटी!' उसने आंखों से इशारा किया.

फिर हुआ होगा ब्रेक-अप या फिर किसी से दोस्ती करवाने की

सिफ़ारिश करेगा. हिम्मत है नहीं. खुद बात करने की. हमेशा उसे आगे कर देता है. मिलवा ही सकती है वह. डेट पर तो महाशय को अकेले ही जाना होगा न. वह पैर पटकती चली आयी थी. उदित उसका हाथ पकड़ तेज़ी से सीढ़ियां चढ़ने लगा.

'अरे पागल गिर जाएंगे. लड़की पटानी है कि ट्रेन पकड़नी है.'

'तू चुपकर. फ़ोन देखा क्या तू ने?'

'क्या हुआ भाई?' उदित के चेहरे पर उड़ती हवाइयां देख, वह भी कुछ चिंतित हुई.

'जीत का फ़ोन आया है तेरी फ़ोटो लगी है किसी ख़राब पेज़ पर... मोबाइल नंबर के साथ.' वह हांफता हुआ बोला.

'व्हाट? ख़राब पेज़ माने?' उसने आश्चर्य के साथ फोन खोला. मिस्ड कॉल का लॉग देखा. कॉल अलग-अलग नंबर से थीं. उसके हाथ कांपने लगे. वह अधिक समझ नहीं पा रही थी लेकिन उदित का स्वर बता रहा था कि कुछ बहुत ग़लत हो रहा है.

'इस सिम को निकाल दे. सब अकाउंट डिलीट कर. फेसबुक, इंस्टा... सब.' वह घबराया हुआ बोल रहा था. इतने में सुचेता का फ़ोन आ गया था. वह कह रही थी—

मिनी ग़जब हो गया यार. तेरा वीडियो सर्कुलेट हो रहा है. क्या होगा अब?'

'व्हाट दफ्...' वह बुदबुदाई फिर भाई को घूरते देख चुप रह गयी, 'सही से बता तो क्या चल रहा है. अनजान नंबरों से रात भर कॉल आयी हैं.'

'तू उठाना नहीं कोई भी फ़ोन...' सुचेता ने हिदायत दी.

'उदित फ़ोटो तो दिखा कहां है? क्या बवाल है कुछ समझें भी तो.' मिनी फ़ोन होल्ड पर रखकर अब उदित से मुख़ातिब थी. अनजान भय उसे अपनी गिरफ़्त में ले रहा था.

उदित ने फ़ोटो खोलकर दिखाया. पिछले हफ़्ते हुई, मिनी की स्कूल फ़ेयरवेल की तस्वीर थी; पाउट के साथ सेल्फ़ी लेते हुए. 'कॉल मी' के कैप्शन के साथ उसका नंबर भी दिया गया था. जाहिर था जब वह सेल्फ़ी ले रही थी कोई और भी उसे कैमरे में क़ैद कर रहा था. ऐसा कोई एक कैमरा भी तो नहीं था. ऐसी एक तस्वीर विम्मी ने भी भेजी थी. सुजॉय ने भी. ग़जब दिन था वह. स्कूल का आख़िरी दिन. कितनी ही तो तस्वीरें ली थीं. फिर ग्रुप में सबने शेयर कर ली थीं.

सुचेता कुछ बोल रही थी पर वह अपने ख़्यालों में खोयी सुन नहीं पायी थी.

'वीडियो क्या? कैसा वीडियो?' उसने वापस पूछा, 'तू भेज मुझे. फॉरवर्ड कर.'

'तू देख नहीं पाएगी यार. रात विक्की का फ़ोन आया. उसे उसके किसी दोस्त ने भेजा. पूछा कि यह तो तेरीवाली है न?'

'तेरीवाली मतलब?'

'अरे यह सब जाने दे लड़कों के पीजेस हैं.'

'पीजेस हैं तो अपने ऊपर बनाएं न. लड़कियों को क्यों बीच में लाते हैं...' कहते हुए उसका स्वर तेज़ हो उठा था.

'सीरियसली यू वॉन्ट टू डिस्कस दिस नाउ? इतनी बड़ी प्रॉब्लम है. इसका क्या करें यह सोचना है.' सुचेता उसे समझा रही थी.

फ़ोन फिर बज रहा था. कोई नया अन–नोन नंबर 'बास्टर्ड' कहते हुए वह फ़ोन छत से नीचे फेंकने लगी फिर रुक गयी. 'पापा!' चिल्लाते हुए तेज़ी से नीचे दौड़ी.

'पागल हो गयी है क्या? पापा को बताएगी?' उदित उसे रोकने दौड़ा.

'मम्मी-पापा को तो बताना ही होगा न!' वह हाथ छुड़ाती हुई बोली.'

'यू आर अन बीलिबेबल मैन! मम्मी पापा को बताने की बात है क्या यह? हम लोग सोच रहे हैं न! जीत आता ही होगा. सुचेता को भी बोल आने के लिए.'

उसने वापस सुचेता को फ़ोन लगाया, 'वह वीडियो भेज तो तू मुझे.'

'भेजती हूं. बड़ा नाटक है यार. परसों मुझे भी एक फोन आया... वीडियो कॉल! जाने किस बेख़्याली में उठा लिया. इतना होरीबल था यार. बस पूछ मत. तुरंत काटा पर रात भर नींद नहीं आयी फिर.'

सुचेता की कहानी में उसे इस वक़्त रुचि नहीं थी. वह अपनी पहेली सुलझाना चाहती थी. 'वीडियो कॉल क्यों उठाती है किसी की भी.' झुंझलाती सी बोली, 'अच्छा वो वीडियो भेज पहले तो.'

सुचेता ने वीडियो भेजा था. भाई नज़र चुराता दूसरी

ओर देखने लगा. वीडियो डाउनलोड होने तक लग रहा था कि हार्ट फेल ही न हो जाए. वह जितनी मनहूस कल्पना कर सकती थी, सब कर डालीं. डांस करती हुई कोई लड़की थी. कोई लड़की ही थी. वह तो हरगिज़ नहीं थी. हां, चेहरा उसका लगा दिया गया था. वह नीचे दौड़ गयी. 'पापा' कहती, गले लग रो पड़ी. मम्मी रसोई से निकल आयीं.

'क्या हुआ? अच्छा लगता है क्या इतने बड़े होकर भी दिनभर लड़ते हो.' उदित को घूरते बोलीं.

'मैंने क्या किया है यार! आप जब देखो मेरे ही पीछे पड़ी रहती हो.' वह झुंझलाता हुआ बोला.

वह पापा को बताना चाहती थी पर बोल नहीं पा रही थी. हवा में तैरती असहजता को मम्मी-पापा ने भांप लिया था.

'फिर क्या हुआ? उदित बताओ भी कुछ.' मम्मी अब चिंतित दिख रही थीं.

उदित तो मौन खड़ा रहा. उसी ने आंसू पोंछते हुए मोबाइल मम्मी की ओर बढ़ा दिया.

'क्या है यह सब?' मम्मी ने आश्चर्य से कहते हुए फ़ोन पापा की और बढ़ाया फिर संकोच से आधे रास्ते में ही हाथ वापस खींच लिया.

'क्या हुआ?' पापा ने आगे बढ़कर फ़ोन लेते हुए कहा.

'जीसस!' वह बुदबुदाए. साइबर सेल में कंप्लेंट करनी होगी।

'यह भी है.' उसने वीडियो प्ले कर मम्मी को दिखाया. मम्मी मुंह पर हाथ रखकर ख़ुद ही रोने लगीं.

'कितना मना करती हूं पर कोई सुनता ही नहीं. पूरे दिन फ़ोन.'

'अब डिलीट कर दे अकाउंट मिनी.' उदित ने धीरे से कहा.

'क्यों तू कर रहा है क्या अपना अकाउंट डिलीट?' वह रोते-रोते चिल्लाने लगी.

'सही तो कह रहा है. यह सब बंद करो बिल्कुल.' मम्मी उदित के समर्थन में थीं.

सुचेता का फ़ोन था. बोली, 'वह पोस्ट रिपोर्ट कर दी है. हटा दी गयी है. वीडियो का क्या लेकिन? क्या करें? जाने कहां-कहां अपलोड किया होगा. अब तो व्हाट्सएप पर भी सरक्युलेट हो रहा है.'

'पूरा स्कूल देख लेगा.' वह फिर रोने लगी थी.

'स्कूल क्या पूरा शहर इसका फ़ोन ले, सब डिलीट कर पहले.' मम्मी उदित से बोल रही थीं.

'... लेकिन मम्मी वह तस्वीर इंस्टा पर है भी नहीं. उस दिन फंक्शन में किसने ली क्या मालूम?'

'इंस्टा पर यह नहीं और तो हैं. वहां से भी कोई ले सकता है न.' उदित ने समझाते हुए कहा.

'तू ज़्यादा ज्ञान न दे.' वह चिल्लायी, 'मेरा फ़ोटो न होता तो तू ख़ुद चार बार फ़ोन मिला चुका होता.' बोलते हुए एहसास हुआ कि ग़लत जगह बोल दिया पर देर हो चुकी थी. मम्मी का रोना फिर शुरू हो गया.

'तुम दोनों क्या करते हो दिन भर! इस फ़ोन ने जीना दुश्वार कर दिया है. जाने कहां परवरिश में कमी रह गयी.'

'लेकिन मेरी क्या ग़लती है मम्मी. मैंने क्या किया है?' वह फिर चिल्लायी.

मम्मी हमेशा की तरह मामा को फ़ोन मिलाकर उनसे सुझाव मांग रही थीं. दरअसल सुझाव नहीं मांग रही थीं. अपना दुख सुना रही थीं. जीत और सुचेता आ गये थे.

'मामा कह रहे हैं, आगे शादी में भी दिक्कत आएगी.' फ़ोन रखते हुए मम्मी ज़ार-ज़ार रो रही थीं.

उनके कंधे पर हाथ रख, उनकी चिंता दूर करने की मंशा से जीत ने कहा, 'आंटी, शादी की तो आप चिंता मत करो. चार लड़के तो बस इसकी हां का इंतज़ार हमारी क्लास में ही कर रहे हैं.'

'ओएमजी! आई डोंट वांट टू गेट मैरिड एवर! प्लीज़, स्पेयर मी.' उसने आंखें तरेरते हुए कहा.

'चुप करो तुम लोग. कोई मज़ाक है क्या?' मम्मी चिल्लायीं, ' पूरा जीवन नष्ट हो जाता है ऐसे.' मम्मी ने अपने सिर पर हाथ रखते हुए जाने किससे कहा.

'बेवकूफ़ी की बातें मत करो.' फ़ोन पर बात करते हुए पापा ज़रूर मम्मी पर ही चिल्लाए थे.

पापा साइबर सेल में बात कर रहे थे. फ़ोन से कुछ प्रिंट ऑउट निकालकर स्कैन करने थे. वह अपने कमरे में आयी. प्रिंटऑउट निकालते हुए देखा कि व्हाट्सएप आपत्तिजनक तस्वीरों और संदेशों से भरा है. नंबर तो बदलना ही पड़ेगा. मन में सोचा...लेकिन लोगों की मानसिकता का क्या? एक नंबर से संदेश था —

'पब्लिक पार्क में ४:०० बजे मिलो. नहीं तो वीडियो तुम्हारे पापा को भेज दूंगा. साथ ही पापा का नंबर भी लिखा था.'

'आप कष्ट न करें. पापा को मैं दिखा चुकी हूं. उन्होंने यह नंबर ट्रैक करने के लिए पुलिस को भी दे दिया है.'

टाइपकर के उसने मैसेज़ डिलीवर होने की प्रतीक्षा की. नीले टिक के आते ही उस नंबर को ब्लॉक कर दिया. पापा साइबर सेल के स्थानीय ऑफिस के लिए निकल गये थे. फ़ोन नंबर से कोई मदद नहीं मिली. फ़ोन संभवतः चोरी का था. जिनके नाम से नंबर था उनकी महीना भर पूर्व मृत्यू हो चुकी थी. फ़ोन की लोकेशन भी अब ट्रेस नहीं हो रही थी. शायद ब्लैंक मेलर ने डरकर सिम बंद कर दी होगी.

'मिनी बेटा, सोशल मीडिया से दूरी तो बनानी ही होगी.' वह मम्मी की गोदी में लेटी थी जब मम्मी ने उसके बाल सहलाते हुए कहा, 'आज यह हुआ है कल कुछ और बुरा हो सकता है.'

'दूरी सोशल मीडिया से नहीं नकारात्मक सोच से बनानी है. परदे में तो लड़कियां सदियों से रहती आयी हैं. अब इन परदों को हटाने का समय है. खिड़कियों और दरवाज़ों से ही नहीं दिमाग़ से भी.' पापा बोले थे.

समर्थ का फ़ोन था उदित के फ़ोन पर.

'क्या करना है?'

'फॉरवर्ड नहीं डिलीट करना है.' उदित ने सधे हुए स्वर में कहा, 'जो तुम्हें फॉरवर्ड करे, उन्हें भी यही कहना है. भय को बढ़ाना नही है उसे वहीं उसी जगह ख़त्म कर देना है. जब हम डरना बंद कर दें तो ब्लैक मेलर के हौसले पस्त हो जाएंगे.' कहते हुए उदित ने बहन को एक आश्वस्त मुस्कान दी.

'यो ब्रो, डर के आगे जीत है.' समर्थ ने सहमति जतायी, 'मिनी को बोलना वी आल आर आलवेज़ हेयर फ़ॉर हर... विद हर.'

'क्या सभी लोग इतने भले है जो डिलीट कर देंगे?'' मम्मी संशय से बोलीं.

'न करें. उनकी समस्या. अभिनेत्रियों के इतने डुप्लीकेट वीडियो रहते हैं. वे परवाह करती हैं क्या?' उदित मेज़ से सेब उठाता हुआ बोला.

'हमारी मिनी किसी स्टार से कम है क्या?' पापा उसका माथा चूमते हुए बोले.

अगले ही पल पापा उसके साथ सेल्फी लेकर अपने सोशल हैंडल पर शेयर कर रहे थे. कैप्शन था —

'फ्लाई माय गर्ल फ्लाई. फ्लाई हाई एंड टच द स्काई!—ऑल वेज़ प्राउड ऑफ यू माय स्टार! विद लव पापा.'

अगले कुछ ही पलों में उसका फोन और एकाउंट 'वी आर विद यू... वी लव यू' जैसे संदेशों से भर गया था.

जिस मिनी को मैं जानती हूं वह सबसे नज़रें चुराती किसी अंधेरे कमरे में बंद न होकर, अगले दिन अपने दोस्तों के साथ हंसती-मुस्कराती पूरे जोश और आत्मविश्वास के साथ कॉलेज़ जा रही थी. आपके पास की मिनी कैसी है? है या...?

अग्रवाल क्लीनिक्स, एम. एल. बी. मेडिकल कॉलेज़ के गेट नं. २ के सामने,
झांसी- २८९१२८ (उ. प्र.)
ई-मेलः *nidhiagarwal510@gmail.com*

मैं आगे बढ़ गयी हूं... का शेष भाग...

कमरा एकदम साफ़-सुथरा था. हर चीज़ करीने से अपनी जगह पर रखी हुई. उसकी पढ़ने की मेज़ के ऊपर दीवार में फ्रेम में जड़ी तस्वीर टंगी थी. उसके नीचे लकड़ी की नामपट्टी पर सुनहरे मैटल के अक्षरों में लिखा था—सौरभ मयंक कुमार.

''ये मेरे डैड हैं. यह मैं हूं. यह बाल्टीमोर का फ़ोटो है.''

''तुम्हारा नाम सौरभ है? बहुत प्यारा नाम है.'' मेरी दादी ने रखा था. वह इंडिया में रहती हैं. पिछले साल मैं उनसे मिलने इंडिया गया था.''

''तुम कहीं बाहर जाना चाह रहे थे.''

''डैड के पास. जब भी वहां जाता हूं इन लोगों का कोई इश्यू हो जाता है.''

''इन लोगों.'' आधा घंटे में दूसरी बार उसने यह दो शब्द कहे.

''आई हैव मूव्ड ऑन.'' विनीता ने कहा था वह कितना आगे बढ़ी थी यह तो वही बेहतर जानती होगी. लेकिन सौरभ का मन आज भी बाल्टीमोर में था. उसका कमरा इस बात का गवाह था.

मकान नं. ४, सरस्वती इनक्लेव,
बद्रीपुर, जोगीवाला,
देहरादून- २४८००५. (उ. खं.)
ई-मेलः *dimjwanti@gmail.com*

गांधी का स्वप्न भंग

■ संजय कुमार सिंह

जन्म : २१मई १९६८:

शिक्षा : एम. ए., पी-एच. डी. (हिंदी)

रचनात्मक उपलब्धियां-

हंस, कथादेश, वागर्थ, अहा जिन्दगी, परिंदे,आजकल, पाखी, परिकथा, कथाबिंब, कथाक्रम, नवनीत, लहक, शब्दिता, वर्त्तमान साहित्य, सृजन सरोकार, सरोकार, एक और अंतरीप, संवेद, कला यात्रा, संवदिया, संस्पर्श, शोध सृजन, नव किरण, पाठ, अंग चम्पा, स्वाधीनता, मुक्तांचल, हिमतरु, नई धारा, साहित्य यात्रा, जन तरंग, वस्तुत:, पश्यंती, वेणु, अभिनव इमरोज, समकालीन अभिव्यक्ति, बया, एक नयी सुबह, प्राची, हस्ताक्षर,आलोक पर्व, लोकमत, अलख, गगनांचल, नया, नवल,अक्षरा, अनामिका, साहित्यनामा, आधारशिला, विश्वा, शीतल वाणी, रचना उत्सव, सृजन लोक, साहित्य अमृत, अविलोम, परतीपलार, उद्घोष, अर्यसंदेश, पुरवाई, छत्तीसगढ़ मित्र,

पल प्रतिपल, दोआबा, सोच-विचार, अनामिका, साहित्य यात्रा, मानवी, विपाशा, हिमालिनी, विश्वगाथा, प्रेरणा, किस्सा, साखी, नया साहित्य निबंध, ककसाड़, किस्सा कोताह, कहन, कला, क़िताब, दैनिक हिन्दुस्तान,जनसत्ता,नयी बात, प्रभात ख़बर, आदि पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित.

अचानक एक रोज़ गांधी जी की इच्छा हुई कि समाधी से निकल कर बाहर की दुनिया देखें. उन्होंने करवट ली. नींद खुल गयी.

चश्मा और लाठी संभाल कर वे बाहर निकले. आंखें मिचिया कर उन्होंने देखा, तो उन्हें डर की अनुभूति हुई. जीवन भर डर को भगाने, सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलने वाले आदमी को अगर डर हो, तो वह अचरज में पड़ेगा ही.

वे समाधि घाट की बगल में बने चबूतरे पर बैठ कर आत्म-चिंतन करने लगे. लाठी और चश्मा एक किनारे रख दिया. दक्षिण अफ्रीका से लेकर भारत तक अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ाने वाले, साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की जड़ उखाड़ने वाले महानायक को डर!

वे आत्म-चिंतन से कुछ-कुछ ऊर्जावान हुए. समाधि की धूल झाड़ कर खुली हवा में सांस ली और सड़क पर आ गए.

उन्हें याद आया एक बार एक अंग्रेज़ कलेक्टर ने कहा था कि वह गांधी को देखते ही गोली मार देगा, तो अगली सुबह वे उसके दरवाज़े पर जा खड़े हुए थे. अंग्रेज़ की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी थी. उन्होंने ख़ुद अपना मन बुलंद किया.

सड़क पर लोग चल रहे थे रोज़मर्रे की तरह रपटते हुए, मगर सब मास्क लगाए हुए थे. वे सोचने लगे कि क्या पूरे भारत में जैन धर्म का प्रचार-प्रसार हो गया? उन्होंने बगल से गुज़र रहे आदमी से पूछा, 'सब मुंह पर कपड़ा क्यों बांधे हुए हैं भाई?'

आदमी ने चौंक कर देखा, जैसे कहना चाह रहा हो, 'अजीब अहमक आदमी हो भाई... किस लोक से आए हो.' लेकिन कुछ सोचकर कहा,'चीन

के वुहान शहर से कोरोना वायरस आया है, उससे बचने के लिए दो गज़ की दूरी और मास्क ज़रूरी है. आप भी ख़रीद लीजिए...'

गांधी जी ने जेब टटोली. खाली घास-फूस थी. साफ़ कर आगे बढ़े. कोरोना वायरस... चीन... वुहान...अभी वे कुछ क़दम ही आगे चले होंगे कि स्वयंसेवकों ने उन्हें घेर लिया और मास्क थमा दिया. मास्क लगाकर उन्हें राहत हुई कि अब उन्हें कोई पहचानेगा भी नहीं. वैसे अभी तक उन्हें किसी ने पहचाना भी नहीं था. बूढ़े, पराए अजनबी की तरह ही थे वे.

□

भटकते-भटकते वे एक जगह सड़क किनारे बेंच पर बैठ गये. उनके समय और इस समय के बीच में उन्हें भारी अंतर दिख रहा था. जगहें वही थीं, पर वे ठीक से पहचान नहीं पा रहे. पैदल चलने में तो उन्हें दिक्कत नहीं थी, पर दिग्भ्रम ज़रूर हो रहा था. सामने दो बूढ़े रिक्शावान खड़े थे. उन्होंने ध्यान से देखा और पूछा, 'इस उम्र में रिक्शा चलाते हो? यह क्या अंधेर है भाई?'

रिक्शावान ने बिगड़ कर कहा, 'बेटे-पोते धेला नहीं देते. कुछ कहो, तो दुत्कारते हैं. रिक्शा नहीं चलाएं तो क्या करें? भूखा मरने से बढ़िया है रिक्शा चलाना... चलोगे? चलो आई.टी.ओ., गांधी म्यूज़ियम... प्रगति मैदान... पंजाबी बाग... नारायणा....'

'नहीं.' उन्होंने इनकार में सिर हिलाया. मन में ख़्याल आया क्या इसी दिन के लिए देश को आज़ाद कराया था? क्या कर रहे हैं. लोग सरकार में बैठकर? वे बेचैनी में उठ खड़े हुए और दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े. पैदल चलने में पहले भी वीर थे. उन्हें संतोष हुआ कि वह त्वरा वर्षों समाधि में रहने के बाद भी बरकरार है. उन्हें लगा वे संसद-भवन के सामने हैं. संसद भवन के चारों ओर पुलिस वाले तैनात थे, ऊंची कलगी लगाए. सुबह से घूमते-फिरते अब दोपहर का समय हो रहा था. उन्हें भूख़-प्यास की तलब होने लगी थी. वे एक पियाऊ के पास गए. नलका घुमाया, तो पानी नदारद. उन्हें ग़ुस्सा आया. इच्छा हुई कि अंदर जाकर हुक्मरान को डांटें कि क्या व्यवस्था है, पर कुछ सोच कर ठहर गए. पिछला अनुभव ये भी था कि बहुत बार उनके अनुयायियों ने उनकी बातें नहीं मानी थीं. वे लौट आए, तय किया आज फिर वही उपवास रहेगा. उपवास रखने में उन्हें वैसे ही महारत हासिल थी. वैसे उनके पास उतनी मोहलत भी नहीं थी. दिल्ली की सड़कों पर वे बार-बार गच्चा भी खा रहे थे. एक जगह उन्होंने अपनी मूर्ति देखी. गोलंबर. पास में पाकड़ का पेड़. कुछ लोग ताश खेल रहे थे, कुछ गांजा-स्मैक टान रहे थे..

वे पिनपिनाए, 'क्या कर रहे हो तुम लोग? ग़लत काम के लिए यही जगह मिली है. गांधी को क्यों बदनाम कर रहे हो.'

'क्या नाम है तुम्हारा?' किसी भगुवाधारी संन्यासी ने कहा, 'मोहन दास.'

'हिंदू हो?'

'हां.'

'चल भाग.' वे लोग हंसे, 'मियां रहता, तो लिंचिंग कर देते...'

'मतलब?' वे अकचकाए.

'भागते हो कि नहीं?' किसी ने पत्थर उठा कर डराया.

उन्हें अपनी मूर्ति के पास से भागना पड़ा. मन तो हुआ कि सत्याग्रह करें, पर उनकी हिम्मत नहीं पड़ी. लोग पहले से अधिक आक्रामक लगे.

□

वे बगल के पार्क में आकर फिर बैठ गए. आज भी हिंदू और मुसलमान का खेल चल ही रहा है. उन्हें देश की चिंता हुई. सबको सन्मति दे भगवान! अब उन्हें वितृष्णा हो रही थी कि समाधि से वे क्यों निकले. अव्वल तो, धुआं गाड़ी, कचड़ा, कल-कारखाने का मलबा इस तरह से दिल्ली की आबोहवा में प्रदूषण फैला रहे थे कि उन्हें खांसी होने लगी. वे देर तक खांसते रहे. उन्हें दुख हुआ कि क्या हाल बना रखा है उनके सपने के भारत का इन लोगों ने..., जीने की राह से ही भटक रहे हैं लोग...

'कौन सदी है भाई?' उन्होंने पार्क में घूम रहे आदमी से पूछा — 'इक्कीसवीं सदी.' व्यंग से मुस्करा कर उसने कहा — 'देश आगे जा रहा कि पीछे?'

'आगे...मीडिया तो यही कह रहा...'

'मीडिया तो किसान आंदोलन की भी हवा निकाल रहा है.' किसी ने प्रतिवाद किया, 'उसमें पहले वाली जन-प्रतिबद्धता कहां रही.. देश ग़रीबी, भुखमरी और बेकारी के

दौर से गुज़र रहा है... महंगाई आसमान छू रही...'

'तो क्या देश पीछे जा रहा..' दोनों उलझने लगे.

वे गुमा गए.

□

उनको झपकी आ रही थी. अचानक पार्क का टी.वी. ऑन हो गया था. पर्दे पर एक गेरुवाधारी सौम्य, सुदर्शन, व्यक्ति अपनी लंबी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कह रहा था, 'भाइयों एवं बहनों, अच्छे दिन आएंगे...'

वे चौंके, विश्व कवि रवींद्रनाथ टैगोर... विश्व मानवतावाद की महाविभूति. कविता की उदात्त भाव-भूमि. उज्ज्वल प्रकाश... वे यहां कैसे आ गए? उन्होंने ध्यान से देखा, लिफ़ाफ़ा और मजमून के मिलान मेन हेरफेर हो रहा था, वे उठ कर टहलने लगे.

पार्क के एक कोने में गोडसे की मूर्ति देखकर वे चौंके. जब तक वे खिसकते गोडसे ने मूर्ति से निकल कर प्रणाम किया, और पूछा — 'क्या मैं यह जान सकता हूं कि आप इधर कैसे आए?'

'घूमने ... अपने सपने के भारत को देखने....'

'वह मिला?'

'नहीं.'

'सुनिए, अगर मैं जानता कि आपके विचारों की हत्या आगे चल कर आपके ही लोग करेंगे, तो मैं क्यों गोली चलाता? आप मुझे माफ़ कर दीजिए.' गोडसे ने वेदना से भर कर कहा, 'वैसे आप से मेरी व्यक्तिगत दुश्मनी नहीं थी...'

'यह मैं जानता हूं.'

'आप बुरा नहीं मानें अब आप आउटडेटेड हो गए हैं...' गोडसे ने संज़ीदगी से कहा, 'आप कहीं नहीं हैं, अपने गृह राज्य गुजरात में भी नहीं. महाराष्ट्र में भी नहीं. बंगाल में भी नहीं. बिहार में भी नहीं. पूरे देश में कहीं नहीं. हां आप म्यूज़ियम में हैं, गांधी संग्रहालय में... घड़ी, चश्मा, चरखा... कुछ लेना हो, तो वहीं जाइए...'

वे तेज़ी से पार्क से निकले और गांधी संग्रहालय की ओर बढ़े. क़रीब एक घंटे के चक्रव्यूह भेदन के बाद संग्रहालय पहुंचे. वहां एक बूढ़ी महिला थी, जो उन्हें अंदर ले गयी. उन्होंने चीज़ों को छू कर देखा और देश की आबोहवा के बारे में पूछा. महिला ने कहा, 'मुल्क की हालत अच्छी नहीं है. हर आदमी दूसरे प्रतिरूप का स्वांग कर रहा है, पर भीतर से वह कुछ और है...'

'मतलब?' उनकी आंखों में गोडसे की छवि घूमी.

'अब मतलब आप जो समझिए... गांधी को मारने वाले गांधी संग्रहालय के संरक्षक हैं, वह कवि नहीं है, जो कवि जैसा दीखता है...वह संत नहीं, जो संत का वेश धारण किए हुए है. कौआ उल्लू की भाषा बोलता है और बगुला हंस की...हवा में ज़हर घुल रहा है. नफ़रत और अलगाव का माहौल है चारों तरफ़ लोग अपने पथ से विचलित हो रहे हैं. सत्ता के गलियारे में कुर्सी का मोल हैं. हर नेता कुर्सी पाने के लिए एक-दूसरे को धकेल रहा. अगले की चमचागीरी कर रहा...'

'टी. वी. में कवि और दार्शनिक जैसा वह आदमी कौन था?' उन्होंने कुछ सोच कर संग्रहालय से बाहर निकलते हुए पूछा. शाम की परछाइयां अब लंबी हो रही थीं.

'वह घुटा हुआ राजनेता है...' बूढ़ी औरत ने फुसफुसा कर कहा, 'वह कबूतर पालता है और उसके पंख नोंच कर उसे मशरूम में मिला कर खा जाता है...'

उसने अगल-बगल चौकन्ना होकर देखा, किसी ने सुना तो नहीं. वह ख़ुद इस सबसे सशंकित और बेचैन लगी.

वे बेहद उदास हुए. अब उनके पास समय नहीं था. बूढ़ी औरत भी बहुत बोलने को इच्छुक नहीं लगी, उन्हें लगा उसकी आत्मा किसी अमूर्त्त वेदना के संत्रास से आच्छादित है, जिसमें उसका वजूद घुलता जा रहा हो. अभिवादन के बाद वे संग्रहालय से बाहर निकल गए.

शाम और गझिन हो गयी थी. अब जगह-जगह बिजली की बत्तियां जलने लगी थीं. किसी तरह घिसटते हुए वे समाधि स्थल की ओर जाने लगे. उनको अफ़सोस हुआ कि उन्होंने समाधि से निकल कर घूमने का फ़ैसला लिया? आख़िरकार हर जगह उनका स्वप्न भंग ही हुआ.

वापस आकर पुन: अपनी जगह वे समाधि में प्रवेश कर गए और फिर लाठी-चश्मा बगल में रख कर लेट गए. बहुत देर तक बेचैनी में करवट बदलते रहे. उन्हें नींद नहीं आ रही थी.

प्रिंसिपल, पूर्णिया महिला कॉलेज़,
पूर्णिया-८५४३०१.
मो. : ९४३१८६७२८३.
ई-मेल : sksnayanagar9413@gmail.com

कविता

परिणत होते पिता

महेश कुमार केशरी

जीवण की तरुणाई वाली सुबह
पिता हट्टे- कट्ठे थे,
गबरू और जवान

उनकी एक डांट पर
हम कोनों में दुबक जाते,
उनका रौब कुछ
ऐसा होता जैसे तूफ़ान के बाद का सन्नाटा.

दादा जी और पिताजी की शक्ल
आपस में बहुत मिलती थी.
जहां दादाजी, सौम्य, मृदु भाषी थे
वहीं...पिता, कठोर ...

कुछ, समय बाद दादाजी नहीं रहे ..
अब, पिता संभालने लगे घर

जो पिता बहुत धीरे से
हंसते देखकर भी हमें डपट देते थे
वही पिता, अब हमारी, हंसी और
शैतानियों को नजर अंदाज़ करने लगे

धीरे-धीरे पिता कृशकाय होने लगे
वे,नाना प्रकार के व्याधियों से
ग्रसित हो गये...

बहुत, दुबले-पतले और कमज़ोर
पिता कुछ ज़्यादा ही खांसने लगे,

बहुत बाद में हमेशा हंसते-मुस्कुराते
रहनेवाले पिता और घर के सारे फ़ैसलेअकेले
लेने वाले पिता

अब खामोश रहने लगे
वे अलग-थलग से अपने कमरे में पड़े रहते
उन्होंने अब निर्णय लेने बंद कर दिये थे...

अपनी अंतिम अवस्था से
कुछ पहले जैसे दादा जी को देखता था

ठीक, वैसे ही एक दिन पिताजी
को मोटर साइकिल पर कहीं बाहर
जाते हुए पीछे से देखा हड्डियों का ढ़ांचा निकला हुआ
आंखों पर मोटे लेंस का चश्मा

मुझे पता नहीं क्यों ऐसा..लगा
दादाजी के फ्रेम में जड़ी
तस्वीर में धीरे-धीरे परिणत होने लगें हैं...पिता..

द्वारा मेघदूत मार्केट, फुसरो, बोकारो (झारखंड) मो-९०३१९९१८७५.
ई-मेल : keshrimahesh322@gmail.com

आमने-सामने

'बंबई के लोग एक अच्छा साहित्यिक माहौल बनाकर रखते हैं !'

✍ अरविंद 'राही'

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ, जयराम सिंह गौर, माधव नागदा, वंदना शुक्ला, गिरीश पंकज, डॉ. हंसा दीप, कमलेश भारतीय, अजीत श्रीवास्तव, डॉ. अमिताभ शंकर रायचौधरी, श्याम सुंदर निगम, देवेंद्र कुमार पाठक, आनंद सिंह, डॉ. इंद्र कुमार शर्मा, आचार्य नीरज शास्त्री, ताराचंद मकसाने और एम. जोशी हिमानी से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है अरविंद 'राही' की आत्मरचना.

प्रीति फूले और फले संसार में,
शुचिता सदा कायम रहे व्यवहार में,
प्रतिपल लुटाऊं प्रेम इस संसार में,
आ गए हम 'गीत के बाज़ार' में.

विगत की याद करूं तो मानस में जो जो चित्र उभरता है उसकी शुरुआत होती है जोधपुर राजस्थान से.

पिताजी भारतीय वायु सेना में थे. १९७१ के भारत-पाक युद्ध के समय उनकी तैनाती जोधपुर में हुआ करती थी. शैशवावस्था की याद ज़्यादा तो कुछ नहीं पर हां इतना ज़रूर है कि ख़ूब सारी रेत का ढेर लगा कर उसके साथ खेलना और मां की स्नेहिल डांट खाना. युद्ध की विभीषिका के समय सायरन बजते ही बंकर में कूदना-छिपना और बंकर में पसरे सन्नाटे के बीच मां से भूख़ की शिकायत करना. उस समय मेरा प्रिय शगल था सायरन की नकल उतारना.

युद्ध की समाप्ति के उपरांत पिताजी को छोड़कर शेष पूरा परिवार लखनऊ नाना जी के यहां शिफ़्ट हो गया. उस समय हमारे नाना पं. राम कुमार भट्ट उत्तर प्रदेश विधानसभा में कार्यरत थे और कर्मचारी यूनियन के अध्यक्ष थे. संभवतः इसी नाते उन्हें

उत्तर प्रदेश के जनपद सुलतानपुर में जन्मे श्री अरविंद शर्मा 'राही' ने इंस्टीट्यूट ऑफ इंज़ीनियरिंग एंड रूरल टेक्नोलॉज़ी इलाहाबाद से सिविल इंज़ीनियरिंग का अध्ययन करते हुए आर्किटेक्चर एंड टाउन प्लैनिंग में विशेषता हासिल की. विगत ३५ वर्षों से लेखन में संलग्न है. देश की लब्ध प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में इनकी रचनाएं लगातार प्रकाशित होती रही हैं. आकाशवाणी इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ, मुंबई आदि केंद्रों से एवं कई टीवी चैनलों से इनकी रचनाओं एवं कार्यक्रमों का प्रसारण हो चुका है. हिंदी समाचार पत्र 'अनन्य भारत' के संपादक हैं. अखिल भारतीय काव्य मंच के सुप्रसिद्ध गीतकार, कवि, लेखक, मंच संचालक राही जी कई सामाजिक/साहित्यिक संस्थाओं से संबद्ध हैं.

महाराष्ट्र सरकार द्वारा अरविन्द राही जी को महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी के लब्ध प्रतिष्ठ सम्मान 'संत नामदेव पुरस्कार' से सम्मानित किया जा चुका है. साथ ही वर्ष २०१६ में महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री देवेंद्र फडणवीस द्वारा श्री राही जी को 'उत्तर साहित्य श्री' सम्मान से भी विभूषित किया जा चुका हैं. इसके साथ ही पूरे देश में अनेकों संस्थाओं द्वारा राही जी को कई बार सम्मानित किया जा चुका है.

श्री अरविन्द शर्मा 'राही' राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय देश की महत्वपूर्ण संस्था 'श्रुति संवाद साहित्य कला अकादमी' के अध्यक्ष हैं.

'दारुलशफ़ा' में विधायक निवास से लगा हुआ एक ठीक-ठाक सरकारी आवास मिला हुआ था. नानाजी गणित और इतिहास के साथ-साथ ही उर्दू एवं फ़ारसी के भी अच्छे जानकार थे. नाना जी कई उच्चाधिकारियों (जिनमें कि कई न्यायमूर्ति और एक गवर्नर साहब भी शामिल थे) के बच्चों को ट्यूशन भी पढ़ाया करते थे. घर में भी बातचीत के क्रम में नानाजी अक्सर ही इतिहास का ज़िक्र, स्वतंत्रता संग्राम की कहानियां, शेर-ओ-शायरी, तुलसी की चौपाई, कबीर-रहीम के दोहे, सूरदास के पद आदि ... आदि का उद्धरण देते रहते थे. इस प्रकार घर का वातावरण साहित्यिक एवं शैक्षणिक बना रहता था. मेरा दाख़िला विद्यालय का नाम विस्मृत हो रहा है पर इतना ज़रूर ध्यान है कि बनारसी बाग के पास स्थित नरही के किसी विद्यालय में करा दिया गया था. इसी बीच पिताजी का स्थानांतरण जोधपुर से अन्यत्र कहीं सुदूर हो गया. हम लोग अपनी मां के साथ सुल्तानपुर जनपद स्थित अपने पैतृक गांव भगवानपुर चले आये. यहां मेरा दाखिला गांव की ही सरकारी प्राइमरी पाठशाला में करा दिया. जन्म से ही शहर में रहा. गांव की बोली-बानी से अनभिज्ञ, पहली बार ग्रामीण परिवेश में रहने का अवसर प्राप्त हुआ. पिताजी के चार भाइयों के संयुक्त परिवार में हम दर्ज़नों भाई बहन इतनी मस्ती में रहते थे कि जैसे हर दिन ही उत्सव हो. किसी न किसी संबंधी का अक्सर ही घर में आगमन होता ही रहता था, जो हमारे लिए अतिरिक्त आनंद का विषय होता था. गांव में हमें तो इस बात का अंदाज़ ही नहीं लगता था कि कौन हमारे घर का है और कौन पड़ोसी. सभी से हमारे बाबा, दादी, चाचा, ताऊ, बुआ, भाई आदि आदि संबंध हुआ करते थे, और सभी साधिकार हम पर अपनी स्नेह-दुलार, डांट-फटकार न्यौछावर करते रहते थे.

गांव की पाठशाला में हमारे एक शिक्षक हुआ करते थे पं. शिवराम तिवारी. ये अपने सुमधुर कंठ से मानस की चौपाई एवं कविताओं की व्याख्या बड़े ही मनोहारी ढंग से किया करते थे, जो आज भी हमें याद है.

रात्रि के भोजन से पूर्व दादी, चाची या बुआ से कहानी सुनना और सोने से पहले नियमित तौर पर बाबा के पैर दबाना, उन्हें पहाड़ा सुनाना, उनसे सूर, कबीर, तुलसी, रसखान आदि की रचनाएं सुनना यह हमारा नित्य का कार्य था. जो माहौल नाना के यहां था, कमोवेश वही माहौल हमें बाबा के यहां भी प्राप्त हुआ. और आज मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे अंदर जो साहित्य का अनुराग जागा, उसका बीजारोपण निश्चित रूप से यहीं हुआ होगा.

वर्ष १९७५ में पिताजी ने वायुसेना से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली. एक बार फिर हम लोग कुछ समय के लिए लखनऊ शिफ़्ट हुए, परंतु शीघ्र ही पुनः गांव लौट आए. सेवानिवृत्ति के उपरांत पिताजी ने लखनऊ हाई कोर्ट में वकालत प्रारंभ की, तदुपरांत एच. ए. एल., स्कूटर इंडिया, आई. टी. आई. रायबरेली, यूको बैंक की नौकरी करते हुए अंत में ग्रामीण बैंक में शाखा प्रबंधक के पद पर नियुक्ति प्राप्त की. इस बीच पिताजी का स्थानांतरण अमेठी में हुआ और मैं अपनी आगे की शिक्षा के लिए उनके साथ अमेठी चला आया. तीन वर्ष तक अमेठी में अध्ययन करने के उपरांत मैं एक बार पुनः आगे की पढ़ाई के लिए राजकीय माध्यमिक विद्यालय सुल्तानपुर आ गया. प्राइमरी पाठशाला

से ही साहित्य के प्रति जो झुकाव बन रहा था अब वह धीरे-धीरे आकार लेने लगा था. इस बीच मैं अतुकांत कविताएं और गीत लिखने लगा था, परंतु संकोचवश उसे किसी को दिखाता नहीं था. हमारे कॉलेज़ में हिंदी के एक बहुत ही अच्छे प्राध्यापक आदरणीय मिश्र जी हुआ करते थे, जिनके अप्रतिम स्नेह ने मेरे अंदर के लेखक को बाहर आने का साहस प्रदान किया. कॉलेज़ से निकलते-निकलते लेखन का यह क्रम चल पड़ा और अब मैं नियमित रूप से लिखने लगा.

वक़्त का पहिया आगे बढ़ा और मैंने इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंज़ीनियरिंग एंड रूरल टेक्नोलॉज़ी, इलाहाबाद (अब प्रयागराज) से सिविल इंज़ीनियरिंग की पढ़ाई करने हेतु एडमिशन लिया. तकनीकी अध्ययन के साथ-साथ साहित्य साधना भी समानांतर रूप से चलती रही. यहां आकर मुझे और खुलने का अवसर प्राप्त हुआ.

कवि सम्मेलनों एवं साहित्यिक गोष्ठियों में आने-जाने का सिलसिला प्रारंभ हुआ. कई स्वनामधन्य रचनाकारों से मिलने का, उनका सान्निध्य प्राप्त करने का, उनसे सीखने का अवसर मिला. इसे मैं अपना सौभाग्य ही मानता हूं कि मुझे महीयसी महादेवी वर्मा, डॉ. राम कुमार वर्मा, श्याम नारायण पांडेय, सोम ठाकुर, नीरज जी, खुमार बाराबंकवी, कैफ़भोपाली, डॉ. श्रीपाल सिंह 'क्षेम', पं. चंद्रशेखर मिश्र, रूप नारायण त्रिपाठी, अशोक चक्रधर, गोविंद व्यास, माहेश्वर तिवारी, कुंअर बेचैन, अजमल सुलतानपुरी, श्रीकृष्ण तिवारी, वृजेंद्र अवस्थी, सागर आजमी जैसे अनेकों साहित्य एवं काव्यमंचों की दुनिया के लब्धप्रतिष्ठ हस्ताक्षरों का सान्निध्य प्राप्त हुआ.

इसी बीच आकाशवाणी इलाहाबाद एवं दूरदर्शन दिल्ली से भी जुड़ने का अवसर प्राप्त हुआ. आकाशवाणी इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ आदि केंद्रों से कई बार रचनाओं का प्रसारण हुआ. 'गीतों भरी कहानी' और 'मनभावन' जैसे कार्यक्रम प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त हुआ. गृहस्थ जीवन एवं अन्य पारिवारिक ज़िम्मेदारियों के साथ ही जीवन यापन की उपक्रम के चलते साहित्य को समय देना थोड़ा कम हो गया. फिर भी जुड़ाव बना रहा. हां इस बीच न जाने क्यों मंचों से थोड़ी विरक्ति-सी होने लगी और काव्यमंचों पर आना जाना धीरे-धीरे कम होता गया. इस सबके बीच मैं वर्ष १९९३ में मुंबई चला आया.

मुंबई जैसे महानगर में काम-धंधे के साथ ही एक स्थायी ठिकाना बनाने की ज़द्दोज़हद में साहित्यिक गतिविधियों पर पूर्ण विराम लग गया. कभी-कभार मन में जब ज़्यादा उमड़-घुमड़ मचती तो कोई न कोई रचना फूट ही पड़ती. एक बात ज़रूर थी कि मुंबई आने के उपरांत भी मेरा पढ़ने का क्रम पूर्ववत ज़ारी रहा. मुंबई में स्वयं को व्यवस्थित करने में मुझे दो-तीन वर्षों का समय लगा. वर्ष १९९५ का उत्तरार्ध आते-आते साहित्यिक दुनिया के अपनों से मिलने-जुलने की छटपटाहट मन में बढ़ती गयी और मैं फिर धीरे-धीरे मुंबई के सृजनधर्मिता एवं साहित्यिक जगत से जुड़े लोगों के बीच आने जाने लगा। इसमें मेरे सबसे बड़े सहयोगी एवं मार्गदर्शक बने सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार भाई देवमणि पांडेय जी. गृह जनपद का होने के नाते पांडेय जी से मेरे संबंध मुंबई आने के पूर्व से ही अत्यंत आत्मीयता भरे पारिवारिक रहे हैं. हालांकि बहुतेरे मित्र ऐसे भी थे जो मुंबई आने से पूर्व ही परिचित थे, उनसे भी पुन: मेल मिलाप होने लगा और इसकी परिणति यह हुई कि मैं एक बार फिर से लेखन में सक्रिय हो गया. मुंबई की कई एक सामाजिक सांस्कृतिक साहित्यिक संस्थाओं से जुड़ाव हुआ जो आज भी अनवरत ज़ारी है. इसी क्रम में डॉ. अनंत श्रीमाली, डॉ. सतीश शुक्ला, डॉ. राजेंद्र गुप्ता, अतुल माथुर (IPS), राजीव सारस्वत, जाफ़र रजा आदि तमाम मित्रों के सहयोग से एक साहित्यिक संस्था 'श्रुति संवाद साहित्य कला अकादमी' का गठन किया गया. अध्यक्ष के तौर पर मुझे, महामंत्री डॉ. अनंत श्रीमाली और कोषाध्यक्ष के रूप में राजीव सारस्वत जी को दायित्व सौंपा गया. संस्था आज भी राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय है. २६/११ के मुंबई आतंकी हमले में शहीद हुए राजीव सारस्वत के नाम पर घोषित 'राजीव सारस्वत सम्मान' राष्ट्रीय स्तर पर अनवरत रूप से दिया जा रहा है. साथ ही आशीर्वाद, बतरस, जीवंती, चौपाल आज तमाम संस्थाओं के माध्यम से साहित्यिक सक्रियता अनवरत रूप से बनी हुई है.

इसी बीच वर्ष २०१३ में मुझे महाराष्ट्र सरकार का लब्ध प्रतिष्ठित सम्मान 'संत नामदेव पुरस्कार' महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा दिया गया. साथ ही तमाम संस्थाओं द्वारा कई एक सम्मानों से सम्मानित किया गया. दूरदर्शन एवं आकाशवाणी के माध्यम से आज भी लगातार सक्रियता बनी हुई है.

व्यक्तिगत तौर पर मेरा मानना है सृजनधर्मिता से जुड़े लोगों को तो स्वाभाविक रूप से समाज के साथ अपना तादात्म्य सदैव बनाए रखना चाहिए. जब तक हम समाज में अपनी सहभागिता नहीं निरूपित करते तब तक हमारा लेखन अधकचरा ही रहेगा और उसमें धार आने की उम्मीद करना बेमानी है. स्वयं की बात करूं तो वर्तमान परिस्थितियों में जितनी आवश्यकता है उतना समय अपने लेखन को नहीं दे पा रहा हूं लेकिन फिर भी प्रयास रहता है कि जो लिखूं सोच समझकर लिखूं, विचार कर लिखूं, अच्छा लिखूं अधकचरा न लिखूं, जो बाद में स्वयं के लिए भी पछतावे का विषय बने. मैं एक बात मुंबई के साहित्यिक परिवेश के बारे में भी कहना चाहूंगा कि यहां किसी भी रचनाकार के लिए कार्य करना बड़ा सुगम हो जाता है क्योंकि यह हमारे मुंबई की विशेषता है कि यहां छोटे–बड़े जितने भी लोग रचनाधर्मिता से जुड़े हैं वे कम से कम किसी गुटबाजी में नहीं पड़ते. मुंबई एक ओर जहां सही मन से, खुले दिल से नवागतों का स्वागत करती है तो वहीं दूसरी ओर वरिष्ठों का भी सम्मान करती है. यहां के लोग एक अच्छा साहित्यिक परिवेश बनाकर रखते हैं जिसमें कुछ करने को स्वत: ही मन करता है. यहां से कई एक लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाएं निकलती रही हैं. कुछ पत्रिकाएं कतिपय कारणों से बंद हो गयीं, कुछ नयी प्रारंभ हुईं. यहां के उदार मना संपादक लगातार अच्छी सामग्री देने के प्रयास में रत रहते हैं. इन्हीं में से एक अंतरराष्ट्रीय ख्याति की पत्रिका है 'कथाबिंब' जिसके सौम्य संपादक भाई माधव सक्सेना 'अरविंद' जी के लगातार आग्रह करके मेरे आलस्य के बावजूद मुझसे यह आत्मकथ्य लिखवा ही लिया जिसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूं.

ए-१८०२, गिरिराज होरायजन,
प्लाट नं. ४३ A & B,
(Opp. Reliance Fresh),
सेक्टर - २०, खारघर,
नवी मुंबई, ४१०२१०.
ई-मेल : arvind.rahi3030@gmail.com

लघुकथा

अनकह व्यथा

ललन प्रसाद सिंह

सुबह पार्क में टहलना, हरी घास पर योग-प्रणायाम दैनिक कार्यक्रम का हिस्सा बन गया था. इस क्रम में मि. चोपड़ा से अस्थाई आत्मीयता हो गयी थी. वे किसी सरकारी महकमे से बिना पेंशन वाली भविष्य निधि स्कीम के तहत रिटायर्ड व्यक्ति थे. हालांकि मुझसे दो साल ही पहले रिटायर हुए थे.

परंतु दिखने में हमसे दस-बारह साल पुराने, बीमार ग्रस्त एवं दुखी व्यक्ति लग रहे थे.

वसंत कुंज के पार्क में सुबह नियमित रूप से चोपड़ा साहब मेरे बगल में बैठ कर योगा करते थे.

योगा के बाद वे प्रसन्न दिखते थे. दस मिनट सामाजिक, पारिवारिक एवं वैयक्तिक विषयों पर चर्चा होती थीं.

कल पेंशन पर चर्चा हुई तो रुंधे गले से उदास होते हुए बताया — हमारी मत मारी गयी और हमने सीपीएफ योजना अपनाई थी, जिसका दंश आज सात-आठ वर्षों बाद भी भुगत रहा हूं.

मैंने पूछा, तब तो अच्छी ख़ासी रक़म मिली होगी? आप उसे व्यवस्थित कर परिवार की गाड़ी सुकून पूर्वक चला रहे होंगे ? घर अपना होगा ?

-नहीं भाई! घर बेटे का है. शासन बहु का.

-तब तो आप बड़े भाग्यशाली हैं जो बेटा आपके साथ है. पैसों को सम्हाल कर रखेंगे तो उसके ब्याज से ख़र्चे भी निकलेंगे. स्वास्थ्य के बड़े ख़र्चों के लिए वो सुरक्षित रक़म काम भी आएगी. अन्यथा नहीं लेंगे.

मेरे इतना कहते ही वो मौन हो गये. उनके उतरे चेहरे पर पारिवारिक प्रपंच में फंसे होने का भाव स्पष्ट झलक रहा था. चोपड़ा साहब के अंदर बहुत कुछ बातें बाहर आने को आकुल हो रही थीं.

वसंत कुंज, नयी दिल्ली-११००७०.

मेरा समग्र साहित्य यथार्थ की भूमि में संवेदनाओं से अभिसिंचित है

सदाशिव कौतुक

(कथाकार/कवि/उपन्यासकार/गज़ल/हाइकु एवं साहित्य की अन्य विधाओं के सर्जक श्री सदाशिव कौतुक से प्रख्यात कथाकार / गज़लकार एवं समीक्षक डॉ. प्रतापसिंह सोढ़ी की बातचीत)

■ आपके नाम के साथ ''सिसौदिया'' सरनेम नहीं जुड़ा है. आप कौतुक लिखते हैं, इसका क्या राज है?

मैं अपने गांव में उन दिनों कक्षा ९ वीं में पढ़ता था. एक बार कई महाकाव्यों के रचयिता श्री श्रीकृष्ण सरल (उज्जैन) मेरे विद्यालय में आये थे. हम विद्यार्थियों ने उनके सम्मान में एक काव्य गोष्ठी का आयोजन किया. जिसमें पहले मुझे कविता पाठ के लिए आमंत्रित किया गया. उस समय भारत-पाकिस्तान युद्ध चल रहा था, जिस पर मैंने एक कविता संग्रह लिखा था ''तू सावधान, रे सावधान.'' उन दिनों मैं दो खंडकाव्य, दो नाटक, एक हिंदी एवं एक निमाड़ी काव्य संग्रह लिख चुका था. मेरे प्राचार्य जी ने सरलजी को बताया कि यह लड़का बहुत ग़रीब परिवार का है. यह अख़बार भी नहीं ख़रीद सकता है, न स्कूल में पुस्तकालय है, मजदूरी करके पढ़ाई करता है. यह तबला-मृदंग भी बजा लेता है. श्री सरलजी को यह आश्चयर्यजनक लगा और उन्होंने मुझे उसी क्षण कौतुक उपनाम दिया. तब से मैंने आज तक कौतुक की मशाल थाम रखी है.

■ किस आयु में आपने लिखना शुरू किया और आपकी पहली रचना का विषय क्या था और वह किसी पत्रिका में छपी थी ?

मैं क़रीब दस-ग्यारह वर्ष की उम्र से गीत-भजन-कलगी-तुर्रा के ख़्याल आदि की तुकबंदी करता रहता था. पहली रचना निमाड़ी में लिखी थी फिर बाद में हिंदी की छंदों में रचना की. मेरी पहली रचना का विषय हास्य था. जिसमें पिता-पुत्र का संवाद था. क़रीब तीन-चार वर्षों तक किसी पत्र-पत्रिका में नहीं छपा परंतु काव्य गोष्ठियों में लगातार भाग लेता रहा. जब गांव छोड़कर इंदौर में आ बसा तब पहली कविता एक साप्ताहिक पत्र ''सप्त क्रांति'' में छपी थी. उस दौरान मैं नहीं जानता था कि साहित्य का इतना व्यापक क्षेत्र है, उन दिनों गोष्ठियों में मिलने वाली दाद ही मुझे लेखन की ओर प्रेरित करती रही.

■ वे कौन से प्रेरक तत्व थे जिनसे आप साहित्य की ओर उन्मुख हुए. आपने जब लेखन प्रारंभ किया उस समय लघुपत्रिकाओं की क्या स्थिति थी ?

मुझे अपने दादाजी से प्रेरणा मिली. वे निरक्षर थे परंतु कई भजन उन्हें कंठस्थ थे. वे एक भजन मंडली चलाते थे, जिसमें पिताजी गाते भी थे और तबला-ढोलक भी बजाते थे. उस वातावरण का मुझ पर असर हुआ और दस-ग्यारह वर्ष की उम्र में खेलने-कूदने की बजाय मैं तुकबंदी करने लगा. धीरे-धीरे मुझे गांव में व आस-पास के गांवों में पहचाना जाने लगा. उस दौरान मैंने कोई साहित्यिक पत्रिका नहीं पढ़ी क्योंकि गांव में कोई ज्यादा पढ़ा-लिखा था नहीं. कुछ लोग थे तो वे व्यापारी थे जो अपने ब्याज के कारोबार में मस्त थे. मैं तो अपनी मस्ती में अंदर से जो विचार आते, जो विषय मिल जाता एक कॉपी में उतार लेता था. मैं नहीं जानता था कि उन दिनों पत्रिकाओं की क्या स्थिति थी.

■ आपका प्रारंभिक जीवन गांव में व्यतीत हुआ था, अभावों की आंच में तपा था. आर्थिक एवं शारीरिक व्याधियों से जूझते हुए भी लेखन की अभिरुचि को गति देने में कौन प्रेरक है ?

मेरा गांव का जीवन अति कष्टमय था. मज़दूरी ही जीवन यापन का माध्यम था. उस दौर में गांवों में खेती के अलावा कोई चारा नहीं था. परिवार में क़रीब ग्यारह सदस्य

सदाशिव कौतुक

डॉ. प्रतापसिंह सोढ़ी

थे. पेटभर खाना नसीब नहीं होता था. किसी रात भूखे सोना पड़ता था, तो कभी साहूकार से कर्ज़ लेकर काम चलाना पड़ता था. मैं आठ-नौ वर्ष का था तब चेचक का रोग हुआ, उस भयंकर त्रासदी का वर्णन करते समय आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं. मैं बहुत सुंदर था, परंतु चेचक में मेरा चेहरा कुरूप हो गया. मेरी एक आंख ख़राब हो गयी. दो भाई चल बसे. ऐसी परिस्थिति में अभावों एवं भुखमरी ने मुझे वैचारिक शक्ति दी. लेखन ही स्वयं को ख़ुश रखने का एक ऐसा माध्यम था जिसकी वजह से मैं टूटा नहीं. बस एक ही भरोसा था, ईश्वर का कि जन्म दिया है, तो पेट भरने को भी वही देगा. मेरा संघर्ष ही मुझे लेखन की प्रेरणा देता था और मर्यादा तथा लोकलाज ने अपराधी नहीं बनने दिया. करुणा-अनुभव और संघर्ष ने ही मुझे लेखक बनाया और अनुभव मेरे जीवन की पहली पाठशाला रही है.

■ यौवनावस्था में गांव छोड़ जीविकापार्जन के लिए आप शहर आ गये. एक मजदूर की हैसियत से आपने काम किया, अपने परिश्रम के बल पर आप भवन निर्माण के ठेके लेने लगे. इस अवधि में भी आप कौन सी ऐसी देवी शक्ति के बल पर सृजन करते रहे, इस संबंध में बताएं.

मैं पैदा हुआ, आंखें खोलीं तो छप्पर के टूटे कवेलुओं पर भूख लिखा देखा, दीवारों पर दरिद्री लिखा देखा और दरवाज़े पर संघर्ष लिखा देखा. मैंने भूख और मौत को बहुत समीप से देखा. शहर आकर मैंने कठिन परिश्रम किया. परिवार का बड़ा बेटा होने के नाते जवाबदार मैं ही था. मैं झुग्गी-झोपड़ी में रहा. मजदूर से कारीगर, कारीगर से लेबर कॉन्ट्रेक्टर, लेबर कॉन्ट्रेक्टर से छोटा बिल्डर हुआ और परिवार की स्थिति को मज़बूत किया. भाई-बहन की शादी की. बच्चों को पढ़ाया और जवाबदारियां पूरी हो जाने के बाद आज से २० वर्ष पहले अपना कारोबार बंद करके साहित्य की सेवा में अपने को लगा दिया. संघर्ष के दौरान बहुत यातनाएं भोगीं, प्रताड़नाएं झेलीं परंतु मेरी वैचारिक शक्ति ने मुझे लेखन से जोड़कर रखा. मेरे दृढ़ संकल्प ने मुझे टूटने नहीं दिया और धीरे-धीरे शहर के साहित्यकारों के संपर्क में आने के बाद लेखन को गति दी. मुझे मित्रों से संबल मिलने लगा. मेरी संकल्प शक्ति कुछ कर गुज़रने की थी और इसी ख्वाहिश ने मुझे आज इस मुकाम पर पहुंचा दिया और साहित्य सृजन को जीवन का प्रमुख अंग बना लिया.

■ साहित्य की सभी विधाओं में आपने सृजन किया है. आपको नहीं लगता कि किसी एक विधा में सिद्धता प्राप्त करना चाहिए थी ?

सच तो यह है कि अनुभव ही मेरी पाठशाला रही है. प्रारंभिक लेखन तो कविता से ही प्रारंभ हुआ है. परंतु मेरे जीवन के कई अनुभवों ने मुझे अन्य विधाओं में लेखन के लिये प्रेरित किया. मैं ऐसा मानता हूं कि हर विधा का अपना महत्व है. परंतु जीवन के हर अनुभव को एक विधा में व्यक्त नहीं किया जा सकता. कहानी की जमीन अलग होती है. जिस पक्ष को हम कहानी में कहना चाहते हैं वह कविता में नहीं कहीं जा सकता. हर विधा का रचनागत एक विचार, एक ज़मीन होती है. वैसे ही जो बात हम छंद में कह सकते हैं, जो बात हम छंदमुक्त कविता में कह सकते हैं वह अन्य विधा में शायद संभव नहीं है. हर विधा की अपनी वैचारिक जमीन होती है और विधा का एक अलग आनंद है. एक ही विधा में ६५ पुस्तके नहीं लिख सकता था, लिखता भी तो

क्या लिखता. इसलिए मैंने उचित समझा, तब कविता लिखी, उपन्यास-कहानी, हाइकु, बाल कविता, लघुकथा, गीत-गज़ल, व्यंग्य आदि विधाओं में लिखा. कहानी लिखने के कारण दो कहानियों पर 'परिंदे' और 'चल जमूरे' शॉर्ट फिल्में बनी. कविता पर शॉर्ट फ़िल्म नहीं बन सकती थी. मेरा आशय यह है कि हर विधा का अपना-अपना दायरा है. मेरा ऐसा मानना है कि रचना किसी भी विधा में हो, उसे मंत्र बनकर आना चाहिए. सार्थक होना चाहिए, स्पंदित करना चाहिए.

■ साहित्य की किस विधा को आप अपनी प्रिय विधा मानते हैं और क्यों ?

मुझे सभी विधाएं भाती हैं. मस्तिष्क में आया विचार विधा को तय करता है. मेरे लेखन की शुरूआत कविता से हुई है. हालांकि मेरे उपन्यास कहानी संग्रह, लघुकथा आदि चर्चित रहे हैं, फिर भी मेरी प्रिय विधा छंदमुक्त कविता ही रही है. साहित्य रचने के लिए नये-नये विचारों की आवृत्ति बनी रहती है. साहित्य रचने के लिए नये-नये विचारों की तलाश जारी रखना चाहिए. जिससे सक्रियता बढ़ती है, प्रसन्नता बढ़ती है, कुछ नया कर देने का भाव मन और मस्तिष्क को आनंदित कर देता है. हमारे मस्तिष्क में विराट अकल्पनीय ऊर्जा है. छंद मुक्त कविता में ऊर्जा प्रकट होने के अधिक अवसर पाता हूं. नई कविता में अभिव्यक्ति से शब्द-शब्द न रह कर मर्ज की दवा बन जाता है. नयी कविता व्यक्ति की बेचैनियों का निचोड़ है और अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है. छंदमुक्त कविता समाज की बुरी ताकतों के खिलाफ़ एक नया आंदोलन खड़ा करने की क्षमता रखती है. वह अलग बात है कि समाज की आंखों के रेटिना के सामने जाला आ गया है. विधा कोई भी हो कविता मंत्र बनकर आनी चाहिए और पाठक को स्पंदित करना चाहिये.

■ आपने लगभग ६५ कृतियों का सृजन किया है. ढेरों सम्मानों से आपको नवाजा गया है, अपनी इन उपलब्धियों पर कैसा महसूस करते हैं ?

मैं ऐसा समझता हूं कि सम्मान और पुरस्कार की उपलब्धि उत्साह तो बढ़ाती है. सम्मानित होने का अर्थ आपके लेखन को सराहा जाना है. लेखक को भी पता लगता है कि वह कितने पानी में है. अच्छे कार्य की प्रशंसा से अच्छे

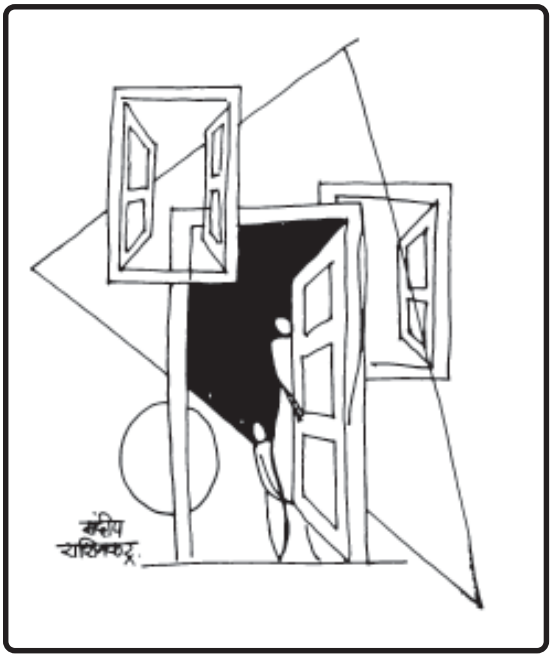

लेखन की ओर उम्मीद भी बढ़ जाती है. परंतु सम्मान सचेत भी करते हैं कि लेखक और सावधान होकर तथा गंभीर होकर समाज को अच्छे से अच्छा दे. सम्मानों से जिम्मेदारी और अधिक बढ़ जाती है.

■ आपकी आत्मकथा ''जितना मुझे याद रहा'' सर्वत्र चर्चित हुई है, डॉ. विजय बहादुर सिंह जैसे प्रखर आलोचक-समीक्षक ने इसे एक इमानदार लेखक की संघर्षों से जूझते जीवन में एक जीवंत पारदर्शी दस्तावेज माना है. इस कृति के संबंध में आपके क्या विचार हैं ?

मुझे अपनी आत्मकथा पर भरोसा है, जिसमें मौत से लुकाछिपी देखी जा सकती है. चालीस वर्षों तक मौत मेरा पीछा करती रही और मैं उसे छकाता रहा. मेरी आत्मकथा के बारे में डॉ. विजय बहादुर सिंह के अलावा देश के क़रीब ३० साहित्यकारों ने समीक्षाएं लिखीं. कईं तो पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं और एक समीक्षा ग्रंथ ''जिंदगी के अक्स'' नाम से प्रकाशित हुआ, जो काफ़ी चर्चित रहा. डॉ. जयकुमार जलज तो लिखते हैं - कि यह आत्मकथा दलित लेखकों द्वारा लिखी गई उन दशकों में प्रकाशित होती जब आत्मकथाओं का बड़ा जोर था तो यह सिरमौर आत्मकथा होती, फिर भी

इस आत्मकथा का मूल्यांकन भविष्य में निश्चित ही होगा. मेरा मानना है कि कोई व्यक्ति जीवन की त्रासदी से परेशान होकर आत्महत्या का मन बना चुका होगा और आत्महत्या करने के पूर्व मेरी आत्मकथा को पढ़ लेगा तो वह आत्महत्या का इरादा त्याग देगा. इतना मुझे विश्वास है और यही बात समीक्षकों ने कही है. मेरी आत्मकथा देशी मार्क्सवादी है जिसे एक बार प्रत्येक पाठक को पढ़ना चाहिए.

■ सोशल मीडिया पर इन दिनों साहित्य की कई विधाओं का सृजन देखा-पढ़ा जा रहा है. ऐसे परोसे गये साहित्य के बारे में आप क्या राय रखते हैं ?

मेरी राय में सोशल मीडिया सूचना आदान-प्रदान का एक सशक्त माध्यम है. घटना-दुर्घटना भेजने तथा फोटो-वीडियो आदि भेजने का सशक्त माध्यम है, जो तत्काल भेजा जा सकता है. ऐसा मानता हूं कि जो भी नई तकनीक आती है वह अच्छाई-बुराई दोनों साथ लाती है. सवाल यह है कि हम उसका उपयोग गंभीरता से करते हैं या सतही तौर पर. सोशल मीडिया त्वरित देता है जिसमें विचारों की व्यापकता नज़र नहीं आती. सोशल मीडिया प्रस्तुतीकरण की अच्छी सहूलियत है परंतु इस पर श्रेष्ठ साहित्य सृजन की उपस्थिति कम ही नज़र आती है. सोशल मीडिया पर आज जो धमाचौकड़ी मची है, उसमें मौलिक साहित्य और गंभीर लेखन दृष्टिगोचर नहीं होता. हां ख़ुश करने के लिए लाइक्स की बाढ़ आ जाती है. मैं मानता हूं सोशल मीडिया पर जो साहित्य आ रहा है, उसे श्रेष्ठ तो नहीं कहा जा सकता न मनन-चिंतन योग्य कहा जा सकता है. जो आनंद पुस्तक पढ़ने से मिलता है, वह सुख सोशल मीडिया पर उपलब्ध नहीं होता है. परंतु हां, सृजनशीलता और पठनीयता अवश्य बढ़ी है, मनोरंजन भी काफ़ी बढ़ा है.

■ देश के वर्तमान हालात के मद्देनजर आप युवा पीढ़ी को क्या संदेष देना चाहते हैं ?

मैं युवा पीढ़ी को यह संदेश देना चाहता हूं कि वे आत्मनिर्भर बनने के साथ अच्छे पाठक भी बनें. अच्छा साहित्य पढ़े-लिखें. अधिक पैसा कमा लेना जीवन जीने का उद्देश्य नहीं होना चाहिए. अच्छा इंसान बनना भी ज़रूरी है और वह साहित्य के माध्यम से ही संभव है. साहित्य मनुष्य को जीवन जीने की कला सिखाता है. ग़लत राहों पर जाने से रोकता है. अच्छे-बुरे के बारे में हमारे अंदर चिंतन पैदा करता है. मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाता है. इसलिए मैं यही कहना चाहूंगा कि राष्ट्र को केंद्र में रखें. भारतीय संस्कृति की जड़ों को पोषित करें, देश के अच्छे सुविचारी मनुष्य बने और देश की ख्याति में चार चांद लगाए. अच्छे नागरिक कहलाए. बेहतर दुनिया बनाने के लिए बेहतर लिखना और बेहतर पढ़ना जरूरी है.

■ इन दिनों आप क्या लिख रहे हैं ?

वैसे आम आदमी मजदूर-किसान के दुख दर्द को केंद्र में रखकर एक लंबी कविता लिखी है. एक कविता संग्रह प्रकाशनाधीन है. एक उपन्यास पर काम कर रहा हूं. बाल कविताएं भी सृजन प्रक्रिया में हैं. वैसे मुझे पचास वर्षों की साहित्य साधना में अच्छा प्रतिसाद मिला है. वर्तमान में मैं श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति का मानद सदस्य एवं प्रबंधकारिणी सदस्य भी हूं. हिंदी परिवार संस्था का उपाध्यक्ष एवं साहित्य संगम का अध्यक्ष भी हूं. शहर की कई सामाजिक-सांस्कृतिक-साहित्यिक संस्थाओं में पदों पर हूं और प्रदेश के उत्कृष्ट आयोजनों में भाग लेता हूं.

अंत में एक बात अवश्य कहना चाहूंगा. मंच के माध्यम से कुछ साहित्यकारों ने साहित्य में पैसा अच्छा कमाया और कमा रहे हैं. परंतु मैंने देशभर में भ्रमण किया, विदेश भी गया परंतु साहित्य के माध्यम से कभी पैसा नहीं कमाया. साहित्य की साधना की और साहित्य की सेवा पचास वर्षों से कर रहा हूं, करता रहूंगा यह मेरा संकल्प है.

श्रमफल, १५२०, सुदामा नगर,
इंदौर-४५२००९ (म.प्र.)
मो. ९८९३०-३४१४९.

प्रताप सिंह सोढ़ी
५ सुखशांति नगर, बिचौली हप्सी रोड,
इंदौर-४५२०१६
मो. : ८९३०२३५२८५

भूल-सुधार

पिछले अंक में सागर-सीपी स्तंभ में साक्षात्कार मूर्ति का नाम असावधानी से प्रणव भारती के स्थान पर प्रवीण भारती चला गया था. इस हेतु हम क्षमा प्रार्थी है.

- संपादक

'मैं सिंधुताई सपकाल!'

✍ डॉ. राजम पिल्लै

'मैं सिंधुताई सपकाल' बस इतनी-ही पहचान, इतना ही परिचय! लेकिन असल में यह एक 'वाक्य' भर नहीं है, एक आंदोलन है, एक अकेले निरुपाय, निराश्रित व्यक्ति द्वारा शुरू किया गया एक आंदोलन, एक अभियान! टूटे-फूटे शरीर, चकनाचूर मन के साथ लगभग रोशनीहीन, दिशाहीन राह पर लड़खड़ा-लड़खड़ा कर उठाया गया क़दम. कोई साथी नहीं, कोई मददगार नहीं लेकिन चलना जारी; पीछे मुड़ना नहीं, डरना नहीं, पछताना नहीं, खोने को कुछ भी नहीं था, बस जैसे एक चिथड़ा-भर संकल्प था—नहीं मरना नहीं है, जीना है...

सिंधुताई सपकाल – 'चिंदी-चिथड़ा-बचपन!'

सिंधु का जन्म १४ नवंबर १९४८ को ब्रिटिश भारत के सेंट्रल प्राविंस एंड बरार के वर्धा जिले में हुआ. पिंपरी मेघे गांव, एक गरीब ग्वाले अभिमन्यु साठे का परिवार. लड़की पैदा हुई, अनचाही संतान, परिवार पर बोझ. इतनी फालतू-सी, जैसे कपड़े का एक 'चिथड़ा' — मराठी में 'चिंदी'

बेहद ग़रीबी, फिर घर के कामों में अनिवार्य हिस्सेदारी. सिंधु पाठशाला भेजी तो गयी लेकिन चौथी क्लास पास हो जाने के बाद पढ़ाई-लिखाई बंद कर दी गयी. जल्दी से जल्दी शादी करवाकर परिवार को अपने सिर का बोझ उतारना था और सामाजिक परंपरा को निभाना भी था. मेल-अनमेल का सवाल ही कहां उठता था?

साल की सिंधु की शादी उससे बीस साल बड़े श्रीहरि सपकाल से कर दी गयी और वर्धा में ही नवरगांव सेलू में गृहस्थी बसाने के लिए भेज दी गयी. सब कुछ मौन रहकर ही सहना था और कहीं कोई आसरा नहीं था — न मायके में, न समाज में किसी रिश्तेदार के यहां.

लेकिन फिर भी शादी चली नहीं. सिंधु को एक बेटी के साथ अकेले रहने के लिए छोड़ दिया गया. उस समय सिंधु बीस साल की थी.

मजबूर मुंहताज ज़िंदगी :

और सिंधु, अपनी छोटी-सी बच्ची के साथ दर-दर भटकने लगी और भीख मांगकर बच्ची और अपना पेट पालने लगी.

और भटकते-भटकते पहुंच गयी चिखलदरा — छोटा-सा गांव/शहर. रेल्वे प्लेटफ़ॉर्म पर सिंधु भीख़ मांगने लगी और अचानक ही जैसे उसने जाना-देखा-महसूस किया कि एक अकेली उसकी बच्ची ही भूखी-बेसहारा नहीं है, और भी बच्चे हैं जिन्हें भीख भी नहीं मिलती सो अब उसने उन बच्चों का पेट भरने के लिए और भी मेहनत कर भीख़ मांगनी शुरू की, लोगों से बिनती-चिरौरी करनी शुरू की, उन बेसहारा बच्चों की बदहाली की तरफ़ लोगों का ध्यान खींचना शुरू किया, मानवता का वास्ता दिया, हमदर्दी को जगाया.

और सिंधु का 'सिंधुताई' (बड़ी बहन) का जीवन एक नये मोड़ पर अनायास आ खड़ा हुआ.

'चिथड़ा' नहीं 'आंचल' :

अब सिंधु ताई, जो भी अनाथ बच्चे मिलते उनकी

'आई' (मां) बन गयी. सिंधु के व्यक्तित्व को एक अनूठा आयाम यहां फिर से खुला. उसने महसूस किया कि जाने-अनजाने वह अपनी ख़ुद की बच्ची की ज़्यादा देख-भाल करती है बनिस्बत दूसरे बच्चों के. 'अपना-पराया' की एक हल्की-सी ही सही पर विभाजक रेखा मन में बन ही जाती है और हमेशा की ही तरह सिंधु स्वयं अपनी सलाहकार बनी, मार्गदर्शक बनी और उसने अपनी बच्ची को संरक्षित और सुरक्षित रखने के लिए एक अच्छे बालगृह में भर्ती कर दिया और अब निर्द्वंद्व भाव से जैसे अपने जीवन-मिशन में जुट गयी.

आदिवासियों की पैरोकार :

'चिखलदरा' महाराष्ट्र के अमरावती जिले का एक गांव था जहां 'टाइगर प्रिसर्वेशन प्रोज़ेक्ट' की वजह से ८४ आदिवासी गांवों के निवासियों को अपना मूल आवास छोड़ना पड़ा था और उनके पुनर्वास की योजना को सही तौर पर कार्यान्वित नहीं किया जा रहा था. सिंधुताई ने बीड़ा उठाया.

सिंधुताई ने ८४ गांवों के सही, समुचित पुनर्वास की ओर सरकार का ध्यान खींचा. बाद में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी वहां उस प्रोज़ेक्ट के सर्वेक्षण के लिए पधारीं तो सिंधुताई ने आगे बढ़कर आदिवासियों की समस्या उनके सामने रखी. सिंधुताई के इन प्रयासों की वजह से सरकार ने यह निर्णय लिया कि अपने स्थान से बेदखल हुए आदिवासियों के पुनर्वसन की समुचित व्यवस्था करने के बाद ही प्रोजेक्ट को कार्यान्वित किया जाएगा.

सिंधुताई ने अपने आदिवासी बच्चों की समस्याओं को सुलझाने के कार्य को अपना मिशन बना लिया.

अनाथालय-आश्रयगृह :

सिंधु 'माई' ने लगातार अपने मिशन को विस्तारित किया. उन्हें सजग, उदार जनों की मदद, अनुदान, सराहना मिलती गयी. और उस धन-राशि को अनाथ बच्चों को आश्रय प्रदान करनेवाले अनाथालयों के निर्माण में लगाया. अब वह एक बच्ची नहीं, हज़ारों बच्चों की मां थी और इन्हीं बच्चों ने बड़े होते-होते उन्हें एक पूरी गृहस्थिन बना दिया — दामाद भी आये., बहुएं भी. सिंधुताई सकपाल के मिशन को प्रांतीय, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सराहना और प्रोत्साहन मिलता गया. अनेक बालिका, महिला-सहायक संस्थाएं भी उनके प्रोत्साहन, मार्गदर्शन में बनीं.

देहावसान :

सिंधुताई का देहावसान ४ जनवरी २०२२ को ७३ वर्ष की आयु में पुणे, महाराष्ट्र में हुआ. उनका जीवन एक मार्गदर्शक प्रतिमान बन चुका था. उनको सम्मान और पारितोषिक उन्हें मिले. समाज ने बार-बार उनके कार्यों के प्रति अपने सम्मान को इसी तरह अभिव्यक्ति दी.

डॉ. राजम पिल्लै

कतिपय पारितोषिक :

२०२१ पद्मश्री समाज कार्यश्रेणी में, २०१७ नारी-शक्ति पुरस्कार — भारत के राष्ट्रपति के हाथों, २०१६ मानद डॉक्टरेट — डॉ. डी. वाय. पाटील कॉलेज ऑफ इंज़ीनियरिंग, पुणे द्वारा. २०१६ सोशल वर्कर ऑफ द इयर पुरस्कार वोकार्ड फाउंडेशन (Wokhardt Foundation) द्वारा. २०१० अहल्याबाई होलकर अवार्ड, महाराष्ट्र सरकार द्वारा महिला तथा बाल-कल्याण के क्षेत्र में कार्यरत सामाजिक-कार्यकर्ताओं के लिए प्रदत्त पुरस्कार. इसके अलावा उन्हें अनेक सम्मान तथा पारितोषिक प्राप्त हुए जिनमें सह्याद्री, हिरकणी पुरस्कार, राजाई पुरस्कार, शिवलीला महिला गौरव पुरस्कार उल्लेखनीय हैं.

'मैं सिंधुताई सपकाल' - मैं सिंधुताई सपकाल :

सन २०१० में सिंधुताई के जीवन-कार्य से प्रेरणा पाकर, उससे प्रभावित होकर सिने-निर्देशक अनंत महादेवन ने एक फ़िल्म बनायी — 'मी सिंधुताई सपकाल' इस फ़िल्म को ५४ वे लंदन फिल्म फेस्टिवल में प्रदर्शन के लिए चुना गया था.

'सिंधु' का जीवन एक अनुठा, प्रेरणादायी, प्रोत्साहनस्रोत है. कमजोरी को भी ताकत का स्रोत बना देनेवाली शौर्यगाथा है.

६०१, ए रामकुंज को.हॉ.सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई-४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५०
ई-मेल : ravindra.pillai@gmail.com

"ऊंची दुकान फीके पकवान"

*("**क्रांति के सपूत**" पुस्तक का प्रकाशन **मंजुश्री प्रकाशन** द्वारा किया गया था. पाठकों को संभवत: ध्यान हो कि "**कथाविंब**" के १९८२-८४ के अंकों में इस पुस्तक का विज्ञापन अनेक बार छपता रहा है. यह पुस्तक क्रांतिकारी **श्री सुखदेवराज** द्वारा रचित है. पहली बार "**जब ज्योति जगी**" शीर्षक से १९७१ के आस-पास यह पुस्तक मिर्ज़ापुर के "**क्रांतिकारी प्रकाशन**" द्वारा प्रकाशित की गयी थी. किंतु पुस्तक में काफी ग़लतियां थीं और सुखदेवराज जी पूरी तरह असंतुष्ट थे. यह बात एक पत्र में उन्होंने भाभा परमाणु केंद्र में कार्यरत अपने पुत्र "**श्री बलदेव राज महेंद्रा**" को लिखी थी और यह भी लिखा था कि वे पुस्तक का पुन: प्रकाशन करवाना चाहते हैं. जहां तक क्रांतिकारी प्रकाशन का प्रश्न है उनके साथ मात्र एक संस्करण प्रकाशित करने की ही बात थी. श्री बलदेव राज जो मेरे सहयोगी और मित्र थे, ने कॉपी राइट मुझे सौंपते हुए यह अधिकार दिया था कि मैं संपादन के पश्चात पुस्तक को प्रकाशित करूं.*

*वर्ष २००९ के शुरू में मुझे ज्ञात हुआ कि राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली ने भी इस पुस्तक को पुन: प्रकाशित किया है और उसे पहला संस्करण (मूल्य : ३२५ रु.) घोषित किया है. साथ में प्रकाशन अधिकार श्रीमती उर्मिला अग्रवाल (पुत्री श्री बटुकनाथ अग्रवाल) के नाम सुरक्षित रखा गया है. मार्च ०९ में, वकील के नोटिस के माध्यम से इन सारी बातों की जानकारी राजकमल प्रकाशन के श्री अशोक महेश्वरी जी को मेरे द्वारा भेज दी गयी थी. तत्पश्चात मार्च २००९ के अंतिम सप्ताह में दिल्ली जाकर मैं स्वयं महेश्वरी जी से मिला. उन्होंने माना कि राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. द्वारा प्रकाशित पुस्तक व मंजुश्री प्रकाशन द्वारा प्रकाशित (क्रांति के सपूत) दोनों एक ही हैं और उन्होंने आश्वासन दिया कि वे शीघ्र ही संपादक श्री सुधीर विद्यार्थी व श्रीमती उर्मिला अग्रवाल से इस संबंध में बात करके मुझसे संपर्क करेंगे. इसके बाद एक बार फ़ोन पर भी महेश्वरी जी से बात हुई किंतु आज तक उनकी ओर से कोई कार्यवाही नहीं की गयी. मूल पुस्तक "**जब ज्योति जगी**" में घटनाओं का क्रम सिलसिलेबार नहीं था. मैंने संपादित करते समय सब घटनाओं को क्रम से लगाया फिर पुस्तक छापी. इसी कारण चोरी पकड़ में आयी. "**क्रांति के सपूत**" पुस्तक की भूमिका अवकाश प्राप्त केंद्रीय गुप्तचर अधिकारी स्व. श्री धर्मेंद्र गौड़ (गोरखपुर) ने लिखी थी जो स्वयं में एक दस्तावेज़ है और बहुत-से अनछुये पहलुओं को उजागर करती है. अभी थोड़े दिन पहले कुछ पुरानी फ़ाइलें देखते हुए श्री धर्मेंद्र गौड़ लिखित भूमिका हस्तगत हुई. यह भूमिका क्रांति के सपूत के साथ ही जानी थी. मेरे घर में पुस्तक की बिना बाइंड की हुई प्रतियां आज भी रखी हैं. वितरक के रूप में मैं "प्रभात प्रकाशन" का नाम देना चाहता था इसलिए मैंने कुछ प्रतियां प्रभात प्रकाशन के स्व. सत्य नारायण मिश्र जी को सैंपल के रूप में दी थीं वहां से कैसे पुस्तक की प्रति सुधीर विद्यार्थी जी के पास पहुंची, यह रहस्य ही बना रहेगा और कैसे तुरत-फुरत राजकमल प्रकाशन ने पुस्तक छाप दी. वितरण के लिए पुस्तक प्रभात प्रकाशन के पास पहुंची तो सत्य नारायण मिश्र जी ने मुझे फोन किया और बताया कि शुरू से लेकर आखिर तक यह पुस्तक आपके द्वारा संपादित पुस्तक की प्रतिलिपि है. सुधी पाठकों के अवलोकन के लिए डॉ. धमेंद्र गौड़ द्वारा लिखित सम्यक भूमिका प्रस्तुत है जो अब तक छपने से रह गयी थी. -* **डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद".***)*

'क्रांति के सपूत' पुस्तक की भूमिका

'क्रांति के सपूत' में क्रांति का वह इतिहास पूरी सच्चाई के साथ उजागर किया गया है, जिसे यथातथ्य रूप में बहुत कम लोग जान सके हैं. लेखक स्वयं गुलामी की ज़ंजीरों से जकड़ी भारतमाता के बंधनों को शीघ्रातिशीघ्र तोड़ डालने के लिए प्राण हथेली पर लेकर चलनेवाले, गोरे महाप्रभुओं के उत्पीड़न, अकारण अत्याचार और असहनीय शोषण से हर समय उद्वेलित रहने वाले, विदेशी शासन की जड़ें उखाड़ कर फेंक देने के लिए स्वाधीनता संग्राम में जूझनेवाले उन जवानों में से एक थे, जो विद्यार्जन छोड़कर जवानी के सारे भौतिक सुखों पर लात मार कर देश में महाक्रांति लाने के लिए संपूर्ण निष्ठा से मचल उठे थे.

लेखक स्वयं क्रांति की आग फूंकनेवाले महान बलिदानी

चंद्रशेखर आज़ाद के कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले क्रांति-संगठन के सक्रिय कर्मठ एवं निष्ठावान कार्यकर्ता रहे. अत: उनकी लेखनी से जो कुछ भी 'क्रांति के सपूत' के पृष्ठों पर अंकित है, वह सब निस्संदेह सत्य एवं पूर्णत: विश्वसनीय है.

जो आज़ादी हमें मिली है उसमें क्रांतिकारियों का योगदान और त्याग ही प्रमुख कारण है. उनके देश-प्रेम, उनकी राष्ट्रीयता की आंधी ने ही अंग्रेज़ी राज्य की जड़ें हिलाकर रख दी थीं. असेंबली के बम विस्फोट ने उन्हें अच्छी तरह समझा दिया था कि क्रांतिकारियों की रगों में दौड़ते हुए मर्दाने ख़ून में किस क़दर गर्मी और किस हद् तक उफ़ान आ गया है, जिसे अब अंग्रेज़ झेलने में समर्थ नहीं हो पायेंगे. यह बात अपनी जगह बड़ी हेय और निराशापूर्ण है, कि अहिंसा की दुंदभी बजाने वाले गांधी और जवाहरलाल जैसे नेता अपनी किन्हीं मज़बूरियों के कारण क्रांति के इन सपूतों पर सहयोग का हाथ रखने की हिम्मत ही न कर पाये. नहीं तो आज इस आज़ादी का स्वरूप कुछ और ही होता. अंग्रेज़ अपनी कूटनीति से भारत का विखंडन कभी न कर पाते. किंतु शोक है, कि उनमें ऐसी सदबुद्धि ही नहीं जगी और वे फांसी के फंदों को असमय में ही चूमनेवाले देश की आज़ादी के सच्चे दीवानों क्रांति के इन सपूतों को अन्याय और अत्याचार से बचाने का पुण्य भी न कमा सके.

सबसे ज़्यादा दुर्भाग्यपूर्ण तो यह था कि क्रांतिदल के कुछ झूठा दमखम दिखाने वाले महज़ यश पाने के लोभी, दग़ाबाज़, यशपाल और वीरभद्र जैसे घिनौने ग़द्दारों ने तो इतने सुगठित दल की मुख़बिरी करके सारी गतिविधियां ही विदेशी सरकार तक पहुंचानी शुरू कर दीं चंद चांदी के टुकड़ों और विलासी जीवन बिताने के चक्कर में. दल की नीति के अनुसार ब्रह्मचर्य पालन तो दूर लड़कियां भगा कर लाने का दुष्कर्म भी कर बैठे. ऐसी हरकत पर ये ग़द्दार प्राण दंड की जगह क्षमा याचना में भी सफल हो गये. परिणामत: दल के गुप्त कार्य कलापों की जानकारी अंग्रेज़ों को बख़ूबी दी जाने लगी और नतीजा यह हुआ कि ये रंगे सियार तो बच निकले मगर मौत को गले लगाया उन्होंने, जिनकी नस-नस में देश-प्रेम समाया था, जो जीवन का हर प्रलोभन, हर सुख स्वराज्य के सुंदर सपने साकार करने के लिए होम कर चुके थे. फिर भी उनका त्याग, उनकी कुर्बानी, उनकी क्रांति नीति से अंतत: आज़ादी मिली, किंतु जाने-अनजाने न जाने कितने नौनिहालों की शहादत और चंद्रशेखर आज़ाद जैसे अपूर्व जीवट वाले महान सेनानी, स्वाभिमानी और दृढ़ निश्चयी देशानुरागी को हम से छीनने के बाद.

ऐसे कर्मवीरों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम इस 'क्रांति के सपूत' को घर-घर पहुंचायें. बुद्धिजीवियों से लेकर साधारण जन भी उसे पढ़ें और जानें कि असलियत क्या थी. ऐसी धाराप्रवाह भाषा-शैली में एक उत्कृष्ट उपन्यास जैसी आनंद देने वाली यह पुस्तक प्रत्येक श्रेणी की शिक्षण संस्थाओं में पहुंचने योग्य है. जन-जन तक यह ऐतिहासिक दस्तावेज़ पहुंचे, यही प्रयास होना चाहिए और यही लेखक की सच्ची सराहना होगी.

मेरा परम सौभाग्य जो 'क्रांति के सपूत' की भूमिका लिखने का दायित्व मुझे सौंपा गया. गुप्तचर विभाग में अपने तीस वर्षीय सेवाकाल के दौरान मैंने दस वर्षों तक तो अंग्रेज़ों की ही ख़िदमत की थी. अत: मुझे अधिकांश जानकारी रही उनके कार्यकलापों की. अंग्रेज़ों को भय था तो बस क्रांतिकारियों का ही. खद्दरधारी नपुंसक कांग्रेसियों की तो उन्होंने कभी भी परवाह नहीं की. इंटेलिज़ेंस डिपार्टमेंट हेडक्वार्टर्स, स्पेशल ब्रांच, गोखले मार्ग, लखनऊ की मोटी-मोटी फ़ाइलों में दफ़न है क्रांति के इन दीवानों की सत्यकथा, जिनका अनेक बार अध्ययन करके मैंने नोट्स तैयार किये. फिर अवकाश ग्रहण करते ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भीषण विस्फोट किया. 'आज़ाद के ग़द्दार साथी' पुस्तक हिंदी में लिखी और 'दि आज़ाद एपीसोड' अंग्रेज़ी में. मेरी इस कार्रवाई ने देश के इन ग़द्दारों को सदा-सदा के लिए सुला दिया.

इसी सिलसिले में श्री सुखदेवराज से मेरी लखनऊ में भेंट हुई थी. दो बार श्रीमती सुशीला आज़ाद भी गोरखपुर में मेरी मेहमान रहीं. पंडित परमानंद सेठी से भी यहीं भेटवार्ता हुई. अनेक भूतपूर्व क्रांतिकारियों के प्रशंसा-पत्र भी मिले. सभी ने मेरे हौसले की मुक्त हृदय से दाद दी.

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई आकर्षक है. प्रूफ की कोई ग़लती ढूंढ़ने पर भी नहीं मिली. मेरा पुन: विनम्र निवेदन है कि 'क्रांति के सपूत' से घर-घर की शोभा बढ़े.

धर्मेंद्र गौड़
केंद्रीय गुप्तचर अधिकारी (अवकाश प्राप्त)
रुंगटा बिल्डिंग, सिनेमा रोड,
गोरखपुर- २७३००१

जीवन का कटु यथार्थ

✍ रामप्रसाद राजभर

'एक टुकड़ा ज़िंदगी' - रूपसिंह चंदेल
प्रकाशक - नीलकंठ प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली -११०००२. **मूल्य** - ५००/-

लेखक की रचना का उद्देश्य क्या हो? इस पर विचार करते हुए मैंने पाया कि हम जो भी अपने आसपास घटित होते देखते हैं उसके कई पहलू होते हैं मगर उसका एक पहलू ऐसा भी होता है जो व्यक्ति और समाज के विरुद्ध और हानिकारक होता है. रचनाकार का यह दायित्व होता है कि वह उस पक्ष से सभी को अवगत कराने का प्रयास करे.

कल्पना की चादर में स्वप्नों को लपेटकर प्रस्तुत करने से कुछ नहीं होता कुंठा के अतिरिक्त. इसलिए यथार्थ को कल्पना के साथ स्वप्न ही एक बेहतरीन व सार्थक विकल्प बचता है.

वरिष्ठ कथाकार डॉ. रूपसिंह चंदेल का नवीनतम उपन्यास है 'एक टुकड़ा ज़िंदगी'. यह चरित्र-प्रधान उपन्यास है जो चंदेलजी की विशिष्ट शैली में बेहद पठनीय है जिसे एक ही बैठक में पढ़कर समाप्त करने की लिप्सा संग-साथ नहीं छोड़ती.

उपन्यास पच्चीस भागों में विभक्त है. कथावस्तु एक महत्वपूर्ण सरकारी फ़ैक्ट्री के प्रशासनिक और 'वर्कशाप' पर आधारित है. देश के जितने भी सरकारी संस्थान हैं वहां भ्रष्टाचार अपने चरम पर होता है और उसमें लिप्त लोग इस कदर चालाक और मक्कार होते हैं कि सही को ग़लत साबित करने में उन्हें महारत हासिल होती है. उपन्यास इस पर गहनता के साथ प्रकाश डालता है. इस कथा-संसार में और भी बहुत कुछ का समावेश हुआ है. ए-ग्रेड को छोड़कर बाक़ी सभी कर्मचारियों को जो रहने के लिए आवास दिये जाते हैं उनकी और ए-ग्रेड वालों के आवास हैं ज़मीन-आसमान का अंतर होना. यह अंतर आज भी अंग्रेज़ियत की पहचान है. इस उपन्यास की एक ख़ूबी यह भी है कि यह साहबों की अय्याशी और सरकारी धन व सुविधा का विस्तार से खुलासा तो करता ही है साथ ही उस कारखाने के कर्मचारियों के रहवास की कठिनाई और असुविधाजनक स्थिति को भी हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है.

एक बानगी —

'आर और एस के लोगों के दैनिक कर्म से निवृत्त होने के लिए उस जंगल में दो सार्वजनिक शौचालय थे, जिनमें रोशनी की कोई व्यवस्था नही थी.'

क्यों नहीं थी उचित व्यवस्था? क्योंकि ये लोग मज़दूर वर्ग के लोग थे. और जो प्रथम श्रेणी के अधिकारी-वर्ग के लोग थे वे बड़े-बड़े बंगलों में रहते थे और सरकारी गाड़ी का इस्तेमाल किया करते थे. मात्र अपने आने-जाने के लिए ही नहीं अपितु अपने बच्चों को स्कूल लाने, ले जाने के लिए और पत्नी को घुमाने-फिराने व ख़रीददारी के लिए भी उसी गाड़ी का उपयोग करते थे. इस देश को पहले भी और आज भी ब्यूरोक्रेट ही खोखला कर रहे हैं. अपने मातहतों को वे गुलाम समझते हैं और उसी तरह व्यवहार करते हैं. उनके चरित्र को इस एक उदाहरण से समझा जा सकता है —

'ये ब्यूरोक्रेट्स बेहद संवेदनहीन होते हैं. कहना यह सही होगा कि नौकरी में आने के बाद ग़रीब घर का युवक भी अपने अतीत को भूल जाता है. यहां तक कि कुछ तो अपने परिवार, रिश्तेदार और अपने बचपन के मित्रों को भी भूल जाते हैं. ऐसे लोगों के विषय में भी सुना है कि वह अपने मां-पिता को भूल गए या भूलने का नाटक किया. बिहार के एक आईएएस ने अपने पिता का परिचय अपने समकक्ष को अपने घर का नौकर कह कर दिया था. नौकरी में आने के बाद अधिकांश पूरी तरह अंग्रेज़ हो जाते हैं.

जितना विज्ञान प्रगति करता गया जाति की जकड़न और जटिल तथा दृढ़ होती गयी. यह उस दौरान भी अपने

चरम पर था जिस दौर को उपन्यास में चित्रित किया गया है अर्थात सातवें दशक के उत्तरार्द्ध और आठवें दशक के पूर्वार्द्ध में. जाति की पूछताछ या पड़ताल अक्सर विवाह के समय की जाती है. लड़कियों का विवाह योग्य वर ढूंढ कर करने का तनाव भी इस उपन्यास में दृष्टिगत होता है.

'एक टुकड़ा ज़िंदगी' में जहां सरकारी धन के दुरुपयोग और भ्रष्टाचार को अत्यंत सूक्ष्मता और गंभीरता के साथ उद्घाटित किया गया है वहीं कुछ समर्पित और सत्यनिष्ठ लोगों पर भी प्रकाश डालता है. वे लोग निम्न मध्यम वर्गीय हैं जो चर्चित क्रांतिकारी शिव कुमार उर्मिल की बहन की सहायता अपने श्रम से करते हैं. लेकिन उनके इस कार्य को फ़ैक्ट्री प्रबंधन अनुशासन-हीनता मानकर उर्मिल की बहन की सहायता करने वाले दो लोगों का ट्रांसफ़र कर देता है. इस प्रसंग से कुछ बातें स्पष्ट होती हैं, पहली तो यह की लेखक की दृष्टि लगातार देश के क्रांतिकारियों पर रहती है. हमारे ही देश में हमारे लिए अपना सभी कुछ न्योछावर कर देने वाले कैसे उपेक्षित जीवन जीने को मज़बूर हुए यह एक विडंबना ही है. उर्मिल की बहन देश की राजधानी दिल्ली की एक नव बस्ती 'उत्तम नगर' में सरकारों की उपेक्षापूर्ण नीति के कारण अभिशप्त जीवन जीती रहीं और जब फ़ैक्ट्री के कुछ उत्साही कर्मचारियों ने उनकी कुछ सहायता करनी चाही तो सरकारी तंत्र का कहर उन पर टूट पड़ा. तो क्या इसी आज़ादी के लिए क्रांतिकारियों ने अपना लहू बहाया था?

उपन्यास में चित्रित दूसरा पक्ष उच्चाधिकारियों का ऐय्याशी का है जो नियुक्तियों से लेकर स्थानांतरण तक शारीरिक और मानसिक शोषण में लिप्त हैं. समय भले बदल गया है और ऐसी बातों के लिए सरकारी क़ानून भी बन गए हैं. कोर्ट भी सख़्त है, लेकिन ब्यूरोक्रेट्स शोषण के तरीक़े निकाल ही लेते हैं.

आज समय और संसाधन बहुत तीव्र और उन्नत हो गये हैं. मगर हमारी मानसिकता रसाताल की ओर अग्रसर है. उपन्यास की पात्रा किरण चौधरी के साथ फ़ैक्ट्री क्षेत्र के कुछ युवक सामूहिक बलात्कार करते हैं. इस दुर्घटना के पश्चात फ़ैक्ट्री एस्टेट के लोग चौधरी परिवार से कन्नी काटने लगते हैं जबकि ऐसे समय उस परिवार को लोगों के संग-साथ की आवश्यकता थी. यह हमारे समाज का एक गुप्त और घिनौना चेहरा है, जिसे लेखक ने परत-दर-परत उघाड़ा है. इस प्रकरण में लेखक चंदेल ने किरण चौधरी के चरित्र को जिस प्रकार से नया आयाम दिया है वह प्रशंसनीय है. किरण चौधरी अपने इस मर्मांतक अत्याचार से हतोत्साहित नहीं होती अपितु वह अपने को मानसिक रूप से मज़बूत करती है. सामाजिक उपेक्षा से आहत उसके पिता नौकरी से त्यागपत्र देकर गांव वापस लौट जाते हैं, लेकिन वह नहीं जाती. उसका भाई दिल्ल्ली में एक बहु-राष्ट्रीय कंपनी में नौकरी करता है. वह उसके साथ जाकर रहती है. अपनी पढ़ाई पूरी करके सिविल सेवा की परीक्षा देती है और आईपीएस बन जाती है. मेरठ में सहायक पुलिस कमिश्नर के पद पर तैनात होते ही वह उन दरिंदों को धर दबोचती है जिन्होंने उसके साथ सामूहिक अत्याचार किया था. ऐसे अत्याचार की शिकार लड़कियों के लिए यह उपन्यास एक सकारात्मक संदेश देता है.

पारिवारिक रिश्तों के क्षरण को भी लेखक ने सशक्तता के साथ चित्रित किया है. तापस बनर्जी के बड़े भाई तापस के बुरे दिनों में उसकी सहायता तो करते हैं मगर उसके बदले पुश्तैनी घर अपने नाम करवा लेते हैं. लेकिन वहीं तापस बनर्जी की पत्नी के घर में गिरकर बेहोश होने पर आस-पड़ोस की महिलाएं उसे अस्पताल पहुंचाती हैं. छोटी जगहों के आपसी राग-द्वेष को उपन्यास में अत्यंत सार्थकता के साथ प्रस्तुत किया गया है.

तापस बनर्जी को जब झूठे मामले में फ़ैक्ट्री प्रशासन सस्पेंड कर देता है तब उसके साथ वाले और परिचित उससे मुंह चुराने लगते हैं. यह उनकी विवशता भी है. यदि वे साथ देते तब उन्हें अपने अधिकारियों का कोपभाजन होना पड़ता जो उनके और उनके परिवार के लिए घातक सिद्ध होता. दूसरा कारण यह कि एक दाग़दार व्यक्ति के साथ संबंध रखने पर उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा प्रभावित होती, लेकिन पहला कारण प्रमुख था. त्रिवेदी और पंत जैसे बहुत परिचित पात्र तापस बनर्जी से दूरी बना लेते हैं, उसका अपना बंगाली समाज तो पहले ही उससे दूरी बना चुका था, क्योंकि जब वह अविवाहित था उनमें से कई परिवारों ने अपनी बेटियों के लिए उसे उपयुक्त वर माना था, लेकिन जब तापस ने उनकी लड़कियों में रुचि नहीं ली और जब उन लोगों ने उसे किरण चौधरी के प्रति आकर्षित देखा तब उससे संवाद तक बंद कर दिया था. हालांकि दुर्घटना के बाद किरण ने शादी

से ही इन्कार कर दिया और दिल्ली जा के रहने के बाद लंबे समय तक उपन्यास में वह परिदृश्य से ही ग़ायब हो जाती है.

लेखक ने दांपत्य जीवन की सकारात्मकता को हमारे सम्मुख जिस प्रकार प्रस्तुत किया है वह उल्लेखनीय है. तापस बनर्जी का विवाह एक संपन्न घर में होता है. इसके लिए वह झूठ का सहारा लेता है. क्लर्क होते हुए भी अपने को वह सेक्शन ऑफ़ीसर बताता है. विवाहोपरांत पत्नी उसके पद के अनुसार अपनी नयी दुनिया को सजाने लगती है. और यहीं से तापस के जीवन में कर्ज़ और तनाव का आरंभ होता है. मुसीबत जब हद् से अधिक बढ़ जाती है तब तापस अपनी पत्नी को सब बतलाता है. तापस की पत्नी का उत्तर प्रशंसनीय है. उसका यह कहना कि, 'यह बात आपने पहले क्यों नहीं बतायी थी,' आज विषाद और विवादग्रस्त परिवारों के लिए एक सबक हो सकता है जिससे वे अपने जीवन को ख़ुशहाल बना सकते हैं.

एक बात और वह यह कि समाज के किसी भी दौर में सत्यनिष्ठ लोग हमेशा समाज के खलनायकों के द्वारा प्रताड़ित होकर संघर्ष का जीवन जीने को विवश हुए हैं. तापस, अभिनव और गुप्ता जैसे लोग इसी प्रक्रिया में पिस जाते हैं.

इस उपन्यास के अंत में तापस और किरण के मिलन की कल्पना किरण के पिता करते तो हैं मगर वहां दोनों का विवाह नहीं दर्शाया गया है. इसके लिए जब मैंने लेखक से संपर्क किया और पूछा तो उन्होंने जो कहा उसको सुनकर मुझे इलाचंद्र जोशी और बांग्ला के प्रसिद्ध साहित्यकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के मध्य हुए इसी तरह के वार्तालाप का स्मरण हो आया.

शरत का एक प्रसिद्ध उपन्यास है 'ग्रामीण समाज'. 'ग्रामीण समाज' में के मुख्य चरित्र हैं — रमा और रमेश. उपन्यास पढ़ते समय लगता है कि अंत आते-आते दोनों की शादी हो जाएगी. मगर उपन्यास समाप्त हो जाता है और पाठक की जिज्ञासा भी. रमा और रमेश का विवाह नहीं होता? क्यों? यह प्रश्न बना रहता है. इसी जिज्ञासा से इलाचंद्र जोशी ने शरतबाबू से वही प्रश्न किया जो मैंने चंदेलजी से किया.

जोशी जी ने शरत से पूछा कि आपने रमा और रमेश का विवाह क्यों नहीं करवाया?

तब शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने पूछा कि, 'क्या दोनों का

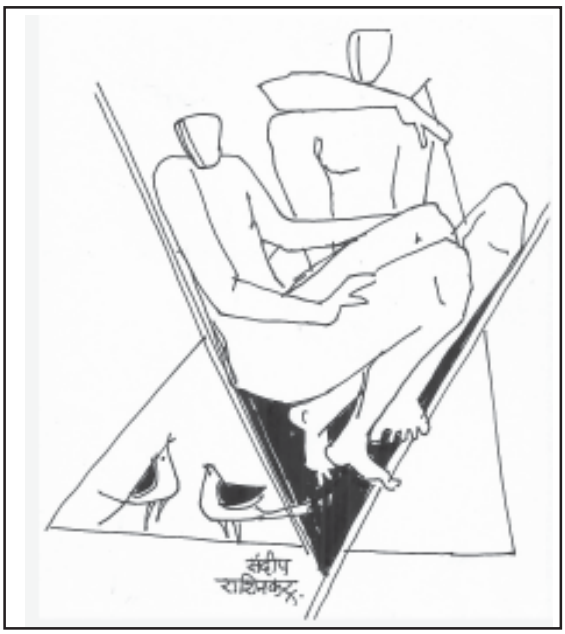

विवाह होना चाहिए था?

'हां, होना चाहिए था.'

'सब लेखक ही करेगा. आप पाठक लोग क्या करेंगे? करवाइए विवाह!'

'तो आपने यह यथार्थ के लिए पाठक और समाज के लिए छोड़ा है!'

'जी हां.'

और यही प्रश्नोत्तर हमारे बीच रहा. इलाचंद्र शरत के समकालीन थे और हम चंदेल साहब के. चंदेल साहब ने भी कहा कि सब कुछ लेखक ही लिख देगा तब पाठक के लिए क्या शेष रहेगा. उसे भी कुछ दिमाग़ी कसरत करना चाहिए. पाठक निष्कर्ष निकाले कि आगे क्या होना चाहिए. किरण चौधरी के पिता शादी का प्रस्ताव नहीं देते लेकिन आशीर्वाद तो देते हैं न दोनों को.

समय बदल जाता है मगर जो सत्यनिष्ठ साहित्यकार होते हैं उनकी विचारधारा एक शताब्दी ही नहीं युगों तक बाद भी मेल खाती है.

RZ-५३–बी, गली नं.३,
दीप एन्क्लेवपार्ट-२,
विकासनगर, उत्तमनगर,
नयी दिल्ली-११००५९.
मो.:९९९५४५५५९८

उजले भविष्य की कामना में बुनी कहानियां

✍ मंजुश्री

कत्ल की रात : रमेश बत्तरा,
प्रकाशक : प्रलेक प्रकाशन प्रा. लि., ६०२, आई-३, ग्लोबल सिटी, विरार (प.), मुंबई-४०१३०३.
मू. ४०० रु.

हरीश पाठक ने 'कत्ल की रात' पुस्तक में रमेश बतरा की चौबीस बेहतरीन कहानियों को संचयित और संपादित करके पाठकों को एक नायाब तोहफ़ा दिया है. हर पीढ़ी का रचनाकार अपने समय का दृष्टा होता है उसकी बारीक नज़र और चिंतन उसकी रचना को आकार देता है जिसमें समाज की अपेक्षाओं, विसंगतियों, विडंबनाओं और तमाम जलते सवालों को मिलाकर वह समाज की सच्चाई को आईना दिखाता है. रमेश बतरा की कहानियों में अपने समय का सच उजागर होता है. दरअसल वे समाज में व्याप्त तमाम ऐसी शक्तियों के विरोधी थे जो नकारात्मकता फैलाती हों. उनकी कहानियों में पात्रों के मनोविज्ञान, मानसिक स्थिति और सोच को ध्यान में रखते हुए अपने आस-पास की चीज़ों का सूक्ष्म निरीक्षण करके कहानियों का ताना-बाना बुना गया है. वे नए-नए कथ्य खोजकर पाठक के सामने इस तरह रखने में माहिर थे कि पाठक सोचता रह जाता है कि यह तो वही है, उनके पात्र कल्पित और दिखावटी नहीं हैं बल्कि धरातल से जुड़े जीते-जागते वास्तविक लोग हैं. रमेश बतरा की अपनी संवेदनशीलता पात्रों की भीतरी संवेदना को पाठकों तक पहुंचा पाती है. सीधी-सादी सहज शैली के संवादों में लिखी कहानियां पाठकों के दिलों को छू जाती हैं. कथ्य के अनुकूल ही भाषा और संवादों का प्रयोग किया है शिल्प कथ्य पर हावी नहीं हुआ है बल्कि एक दूसरे में बुने हुए से हैं इसीलिए शिल्प के जाल में न फंस कर पाठक कहानी को पकड़ पाता है.

रमेश बतरा सामान्य घटनाओं को उठाकर पाठक के सामने रख देते हैं और पाठक स्वयं उनमें अपने ढंग से विचरता, रमता, बातचीत करता चलता है. मध्यमवर्गीय परिवार के भीतर रिश्तों की जटिलताएं, उलझनें, पिछड़ी हुई सोच, प्रपंच को झटकते हुए बेहतर समाज की कल्पना करती कहानियां हैं. 'शर्म-बेशर्म' कहानी इसी दकियानूसी सोच के खिलाफ़ आवाज़ उठाती है. केवल विजातीय शादी के खिलाफ़ होने के कारण अपनी ही बेटी को जला देना और उसे आत्महत्या बताना, मां-बाप द्वारा इलाज़ न करवाने के कारण बेटी की कीड़ों से बिलबिलाती लाश को एक हरिजन से नहलवाना, पत्थर दिल मां बाप को मंजूर है पर उसके विजातीय प्रेमी नरेन का पास आने देना मंजूर नहीं है. अंत में नरेन पुलिस के पास जाने की ठान कर ऐसी सोच के खिलाफ़ खड़ा होता है. उसी तरह 'अधिनायक' कहानी में दो पीढ़ियों के बीच टकराव है. मां को अपने बेटे का लेखक बनने का सपना पसंद नहीं है, चाहती है कि बेटा वही करे जो वह चाहती है यहां तक कि उसे अपनी जली-कटी बातों से ठेस पहुंचाने से नहीं चूकती उसके पिता भी मां के कारण बेटे के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं. दरअसल मां ही है अधिनायक जो हर किसी को अपने अनुरूप चलाना चाहती हैं पर बेटा परिवार, समाज और समय से लड़ने की ठान कर घर छोड़कर चला जाता है. यहां हिम्मत करके निर्णय लेने और बगावत करने की आहट सुनाई देती है.

कहानी 'ज़िंदा होने के खिलाफ़' में बेकारी से परेशान कथानायक की मानसिक स्थिति, उसकी सोच और मन की उथल-पुथल का बहुत सटीक वर्णन है वह अपनी ज़िम्मेदारी से भागता रहता है उसे लगता है कि उसकी बेकारी के कारण उसके प्रति घर के सब लोगों का व्यवहार बदल रहा है यहां तक कि उसे मां द्वारा बार-बार ज़िम्मेदारी का एहसास दिलाना अच्छा नहीं लगता पर एक दिन जब यह कहते हुए कि 'दाह संस्कार तो करना है न' मां उसे अपनी आख़िरी दो चूड़ियां बेचने के लिए देते हुए बताती है कि अभी थोड़ी देर पहले उन्हें दौरा पड़ा और वो... तब उसे एहसास होता है कि वह अपनी परेशानियों में डूबा घर से कितना कटा हुआ है, एक अजनबी की तरह उसे पिता की मृत्यु का भी पता नहीं चला. दोनों कहानियों के कथानायकों में रिश्तों की बेवजह जकड़ से छूटने की छटपटाहट दिखाई देती है. सीधी

सरल कहानी बहुत कुछ कह जाती है. रमेश बतरा की कहानियां भेड़चाल से अलग हटकर लिखी गयी हैं. परंपरा से हटकर नए-नए विविध कथ्यों ने उनकी कहानियों को विशिष्ट बना दिया है. 'नंग-मनंग' का कथ्य एकदम अलग है जहां पति पहली रात ही पत्नी से खुली रोशनी में निर्वस्त्र हो जाने का आग्रह करता है. दरअसल नायक के पास बचपन से निर्वस्त्र रहने की एषणा है जिसे वह कभी पूरी नहीं कर पाया. सोचता रहता था कि वस्त्रों की उपयोगिता क्या है. अंत में पत्नी का अपने लिए निर्वस्त्र होना और यह कहना कि वह बलात्कार नहीं सहवास चाहती है क्योंकि नग्नता एक ऐसा माध्यम है जिसका आनंद के क्षणों में कोई अस्तित्व नहीं रह जाता. पति का सारा उल्लास पछाड़ खा जाता है हाथ-पांव शिथिल होने लगते हैं और फिर उसके सामने साफ़ होने लगता है कि स्वाभाविक अवस्था में कोई निर्वस्त्र होकर भी नग्न नहीं होता.

'हूटर' कहानी में बेरोज़गारी के कारण भुखमरी की स्थिति में पति स्वयं अपनी ही पत्नी के लिए ग्राहक खोजने निकल पड़ता है, पर हर ग्राहक को अपनी पत्नी के साथ सोचकर उसका ज़मीर उसे धिक्कारने लगता है और अपने घर और पत्नी के प्रति ज़िम्मेदारी का एहसास उसकी आदमीयत को बचाने में कामयाब हो जाता है. वह फिर हिम्मत जुटाता है और इस घटिया विचार को त्याग कर अपनी लड़ाई खुद लड़ने का निर्णय लेकर ज़लालत से बच जाता है. घर की तरफ़ वापस भागते हुए राहत की सांस लेता सोचता है कि वह अपने जीवन की एक बहुत बड़ी ग़लती करने से बच गया. कथ्यों में परिपक्वता है अश्लीलता नहीं है. नये विषयों के साथ मार्मिक प्रसंगों ने कहानियों में जान डाल दी है. 'कुंए की सफ़ाई' कहानी के माध्यम से रमेश बतरा समाज में फैली तमाम बुराइयों की सफ़ाई करने की बात उठाते हैं. 'उस नचनी से अपने ख़ून का भरोसा करता है न जाने किसका पाप है...' मां द्वारा अपनी पत्नी के लिए बेहद अपमानजनक शब्दों से आहत बेटे का बच्ची सहित कुंए में छलांग लगा जाना पत्नी को दोषी बना रोज़-रोज़ मरने की सज़ा सुनाने जैसा था पर विधवा पत्नी ने हार नहीं मानी. वह परिस्थितियों से घबराकर भागी नहीं बल्कि वहीं घर-बाहर कीउपेक्षा और ताने सुनते हुए प्रण किया कि उस कूड़े से भरे कुंए की सफ़ाई करा कर पहली बार अपनी गोद ली बच्ची को उसका पानी पिलाएगी. यह सफ़ाई कुंए की नहीं लोगों की दकियानूसी घटिया सोच की है. परिस्थितियों से जूझते हुए बदलाव लाने की कोशिश करने का ज़ज्बा रखने का संदेश देती अच्छी कहानी है.

'रेल चली' कहानी में सरेआम लुटते व्यक्ति को सबका चुपचाप देखते रहना जनता की बुज़दिली और दब्बूपन की निशानी है पर यह उस व्यवस्था पर करारा थप्पड़ है जहां लोग अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी से मुंह मोड़कर पत्थर बने अपनी आंखों के सामने अपराध होते इसलिए देखते रह जाते हैं क्योंकि उन्हें मालूम है कि आवाज़ उठाने से कोई फ़ायदा नहीं है कोई सुनने वाला नहीं है.किसी को क़ानून और पुलिस पर भरोसा नहीं है.'जंगली जुगराफ़िया' भी इसी तर्ज की बहुत बढ़िया कहानी है. कैसे फौज़ में बहादुरी का मैडल प्राप्त फौजासिंह अपनी पत्नी को न्याय दिलाने की लड़ाई में हार कर टूटने की कगार पर आ जाता है. गांव के सरदार द्वारा अपनी पत्नी प्रीतो के बलात्कार की विधायक से शिकायत करने पर विधायक महाशय ने सरदार पर कोई कार्यवाही नहीं की बल्कि उसने भीसरदार के साथ प्रीतो काबलात्कार किया और अंत में प्रीतो ने आत्महत्या कर ली, इन घटनाओं की शिकायत लेकर पुलिस में उसका गुहार लगाना, पर सबका मिलकर उसे ही पत्नी की हत्या का दोषी बनाने की साज़िश रचकर ज़ेल में फौजासिंह पर इतने ज़ुल्म करना कि वह कबूल कर ले कि प्रीतो ने आत्महत्या नहीं की उसकी हत्या फौजासिंह ने की है.अंत में फौजासिंह का कहना कि प्रीतो को बादशाह ने मारा है....' वही बादशाह जो तमगे बांटता है.' फौजासिंह ने बादशाह व्यवस्था या सरकार को कहा है जिसकी आंख के नीचे सब होता रहता है. कहानी में व्यवस्था के भीतर फैली अव्यवस्था के चक्र में समय और परिस्थितियों से जूझते फौजासिंह का इतना मार्मिक चित्रण है कि पाठक फौजासिंह के साथ अपने को खड़ा पाता है.

सामाजिक सरोकारों पर गंभीर सवालों को उठाती कहानियां होते हुए भी किस्सागोई के कारण बोझिल नहीं हैं सकारात्मक सोच रखने वाले उनकी कहानियों के पात्र व्यक्ति के विभिन्न पहलुओं को सामने रखती हैं. हर कहानी अपने आप में अलग है. समाज में होते नकारात्मक परिवर्तन पर निग़ाह रखती हुई रमेश बतरा की कहानियां अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी का निर्वाह करती हैं और विसंगतियों पर चोट

करती हैं. व्यक्ति के अंतर्द्वंद और कशमकश को व्यक़्त करती बेहतरीन कहानियां हैं जो अपनी प्रवाहमयी भाषा के कारण गहरा प्रभाव छोड़ती हैं. वे पूर्व निर्धारित ढांचे पर कहानियां नहीं लिखते, बल्कि कहानी ख़ुद ब ख़ुद अपना प्रवाह बनाए रखती हैं. उन्होंने तमाम ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो सामान्य तौर पर या तो बोले नहीं जाते या बहुत कम बोले जाते हैं उनके अपने बनाए हुए पर उनसे कहानियों को धार मिलती है. 'लड़ाई है' कहानी में बिल्कुल अलग ढंग से छोटे-छोटे दो-दो शब्दों के वाक्यों का अनोखा प्रयोग किया है. 'रामकली थी, वोट था, बेटा था, सपने थे, ख़ुशी थी, आशा थी, राहत थी....' वोट रामकली का प्रजातांत्रिक अधिकार है, वोट देकर सरकार बदलना चाहती है पर वोट के लिए दस पैसे की परची बनाना है, दस पैसे न होने पर रामकली धंधा करने के लिए तैयार है क्योंकि उसकी जैसी औरतों के अधूरे सपनों को पूरा करने की लड़ाई है. 'रामकली है, ज़िंदगी है, दरकार है, सरकार से, वोट से, ज़िंदगी से.'

'कत्ल की रात' संकलन की शीर्षक कहानी व्यवस्थागत गिरावट की नंगी तस्वीर पेश करती है. आज की राजनीति के असली रूप को दिखाती बढ़िया कहानी है. कल वोट पड़ने हैं और आज कत्ल की रात है चारों ओर नोट, वोट, शराब का बोलबाला है. अपने पक्ष में वोटर को करने के लिए इलाक़े संभाले जा रहे हैं. डर, हिंसा दबाव का माहौल है. साम, दाम, दंड, भेद से सत्ता को हथियाने की साजिश रची जा रही है. सारे हथकंडे अपनाए जा रहे हैं जबकि वोट हमारा प्रजातांत्रिक अधिकार है. राजनीति हत्यारी हो गयी है और पुलिस नहीं केवल वर्दी है तंत्र पर जबरदस्त प्रहार. सतनाम कहता है 'आज की रात, कत्ल की रात है. कल वोट पड़ेगा... वोट क्या है, वोट नोट है, शराब है, शराब ज़हर है, आपको घुला-घुलाकर मारती है....'राजनीति भी तो....लोग उसे पागल समझ रहे हैं पर वो पागल नहीं है सच कह रहा है. कि वोट का इस्तेमाल ज़रूर होना चाहिए पर सोच समझ कर 'उसे जो सत्ता में है या उसे जिसकी नीतियां जनता के हक़ में जाती हों.' 'फाटक'कहानी की जानकी भी इसी तंत्र की शिकार है वह सिपाही हरिहर से शादी करना चाहती है पर राजा साहब ने ज़बरदस्ती जानकी से शादी कर ली और पुलिस में होते हुए भी हरिहर का अफ़सर भी उसके लिए कुछ नहीं कर सका. जानकी ने भी राजा साहब का वारिस...

तमाम निगरानी में अपना बच्चा जनते ही जांघों के बीच दबा कर मार डाला और राजा साहब से बदला ले लिया, उसके सिर पर ख़ून सवार था. वह नहीं चाहती थी कि राजा साहब जैसा वारिस पैदा हो, वो राजा साहब जिसकी वजह से हर साल गांव की पंद्रह-बीस जवान लड़कियां खेतों, तालाबों में मरी पायी जाती थीं. उसे फांसी की सज़ा हो जाती है पर वह टूटती नहीं आवाज़ उठाती है, लड़ती है और जेल के भीतर चुपचाप अत्याचार सहती औरतों को आवाज़ उठाने के लिए प्रेरित करती है. वह विद्रोह का बीड़ा उठाती है. परिस्थितियों ने उसे मज़बूत बना दिया है अब वह डरी सहमी निरीह नहीं रह गयी है मौत से उसे डर नहीं लगता. नयी राह तलाशती हुई पाठकों को सचेत और बेचैन करती है. उनके पात्र हाशिए पर बैठे हैं जिनके सपने हैं, चुनौतियां हैं पर जिजीविषा और आत्मविश्वास भी है. जड़ हो चुके समाज को झकझोरती उजले भविष्य की कामना में बुनी हुई रमेश बतरा की अच्छी कहानियां पाठकों के सामने लाने का लिए हरीश पाठक को धन्यवाद.

संपादिका 'कथाबिंब',
ए-१० बसेरा, दिन क्वारी रोड,
देवनार,मुंबई-४०००८८.
मो. ९८१९१६२९४९

जीवन-वैविध्य की कहानियां

रूपसिंह चंदेल

'अरविंद की चुनिंदा कहानियां' *- डॉ. अरविंद*
प्रकाशन : *इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड,*
सी-१२२, सेक्टर-१९, नोएडा-२०१३०१.
मो. नं. ९८७३५६१८२६
मू.२००/- (पेपरबैक), ३००/- (हार्डबाउंड).

हिंदी साहित्य में अनेक ऐसे साहित्यकार हैं जो साहित्यिक शोरगुल, राजनीति, मठाधीशों से दूर केवल सृजन सरोकारों तक ही अपने को सीमित रखते हैं. साहित्य की अभिवृद्धि, विकास और उसकी सेवा उनका मुख्य ध्येय होता है. ऐसे ही साहित्यकार हैं डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद', जो जितने अच्छे कथाकार हैं उतने ही अच्छे इंसान और संपादक. लगभग तैतालिस वर्षों से 'कथाबिंब' जैसी महत्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका का संपादन करते हुए हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि में उन्होंने जो योगदान दिया है वह न केवल श्लाघनीय है बल्कि हिंदी लघु-पत्रिका के क्षेत्र में ऐतिहासिक भी है. किसी पत्रिका के संपादक के लिए सृजनशील रहना बहुत मायने रखता है, वह भी विशेष रूप से लघु-पत्रिका के संपादक के लिए और एक ऐसे संपादक के लिए जो अपनी पत्रिका में बिना किसी भेदभाव और राजनीति के रचनाकारों को स्थान देता है. 'कथाबिंब' ने कितने ही नये रचनाकारों को आगे बढ़ाने में अहम भूमिका निभायी, लेकिन उसके संपादक अरविंदजी को राजेंद्र यादव की भांति यह गुमान नहीं कि वह उसके लिए 'इट्स माय क्रिएशन' कहते अर्थात यह वह रचनाकार है जो मेरी या मेरी पत्रिका की देन है. राजेंद्र यादव ने इन पंक्तियों के लेखक को लंबे साक्षात्कार के दौरान कुछ लेखकों को लेकर यही कहा था.

उपरोक्त बात प्रसंगतः आयी, जबकि मैं यहां डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' जी के सद्यः प्रकाशित कहानी संग्रह 'अरविंद की चुनिंदा कहानियां' पर चर्चा करना चाहता हूं. उनका यह कहानी संग्रह 'इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि., नोएडा' से प्रकाशित हुआ है. जैसा कि संग्रह के नाम से स्पष्ट है, इसमें अरविंदजी की अब तक लिखी कहानियों में से चयनित कहानियों को सम्मिलित किया गया है. ये कहानियां जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालती हैं. इनमें देश है तो विदेश भी है. 'मीन माने मछली', 'मेरे हिस्से का आसमान' और 'पच्चीसवें माले का फ़्लैट' विदेशी पृष्ठभूमि को केंद्र में रखकर लिखी गयी कहानियां हैं. प्रेमचंद्र के अनुसार एक कथाकार को राह चलते, ट्रेन में, अख़बार में या कहीं भी कहानी के विषय मिल जाते हैं बशर्ते वह अपनी आंखें खोले रहे. लियो तोलस्तोय अपने पास हर समय एक छोटी-सी डायरी रखते थे (तोलस्तोय की जीवनी - 'तोलस्तोय' - लेखक- हेनरी त्रोयत, अनुवाद - रूपसिंह चंदेल) और जब भी कोई विषय सूझता उसमें दर्ज कर लेते. हर रचनाकार की अपनी रचना प्रक्रिया होती है. अरविंदजी की उपरोक्त तीनों कहानियों में उन देशों की स्थितियों को सघनता के साथ चित्रित किया गया है. 'मीन माने मछली' का एक उद्धरण दृष्टव्य है :

'ज़्यादातर कनैडियन युवक-युवतियों को लगता कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अर्थ सात-आठ सालों को जाया करना होगा, क्योंकि नौकरी के वेतनमान शिक्षा से जुड़े हुए नहीं थे. ऐसा नहीं था कि अधिक शिक्षित होने पर वेतन में बहुत अंतर पड़ जाता हो. अधिकांश छात्र पार्ट टाइम नौकरी करते हुए अपनी पढ़ाई का ख़र्चा स्वयं वहन करते हैं. मां-बाप बच्चों की कॉलेज़ या यूनिवर्सिटी की पढ़ाई के लिए पैसे नहीं ख़र्चते.'

कहानी चीनी मूल की मीन नामक युवती को केंद्र में रखकर लिखी गयी है जो अपने मंगेतर की आर्थिक सहायता के लिए पढ़ने के साथ 'पिज्जा हट' में पार्ट टाइम काम भी करती है. वह नैरेटर का ख़्याल भी रखती है और जब नैरेटर उसके मंगेतर की चर्चा करता है वह कहती है, 'नो, आई हेट हिम, वह चिट्ठी भी नहीं लिखता.' ऐसा वही कह सकता है जो किसी को हृदयतल से प्रेम करता है. लेखक ने इस कहानी के माध्यम से कनाडा में पढ़ने गये छात्रों की समस्याओं, वातावरण आदि का यथार्थपूर्ण और आकर्षक वर्णन किया है. 'मेरे हिस्से का आसमान' में लेखक कनाडा की जीवन-

स्थितियों पर गहनता के साथ प्रकाश डालते हैं. 'हाय!' 'हलो!' या फिर इसी तरह के छोटे-छोटे औपचारिक वाक्यों के अलावा कोई भी किसी की निजी जिंदगी में दख़ल नहीं देता. — बिना फ़ोन पर समय लिये कोई किसी के घर नहीं आता-जाता और 'पच्चीसवें माले का फ़्लैट' में न्यूयॉर्क के जीवन, वहां और उसके आसपास के सौंदर्य, आदि का जीवंत वर्णन लेखक ने किया है. कहानी का अंत बहुत ही मार्मिक है और पाठक को झकझोर देता है.

हमारे देश में राजनीतिज्ञ और उनके चाटुकार कितना संवेदन ही न हो चुके हैं इसका ज्वलंत उदाहरण है 'उद्घाटन' कहानी. एक नेताजी द्वारा शक्ति-माता मंदिर में शक्ति-माता मूर्ति के अनावरण का प्रसंग पाठक को उद्वेलित करता है. शक्ति-माता की मूर्ति के एक हाथ से अचानक रक्ता भद्रवट पकता है जिसे अशुभ माना जाता है. उसके स्थान पर पीओपी और लकड़ी के हाथ लगाने के उद्यम जब असफल हुए तब रसायनोपचार के बाद किसी महिला का हाथ लगाए जाने का निर्णय किया जाता है. इसके लिए ग़रीब आदिवासी महिलाओं को लाया जाता है और अंततः एक महिला को राज़ी किया जाता है. मूर्तिकार सफलतापूर्वक हाथट्रांस प्लांट करने में सफल रहता है. मूर्ति का अनावरण समारोह संपन्न होता है. यह कहानी यह बताती है कि ग़रीबों का कोई जीवन नहीं. जिस ग़रीब ने दस रुपए का नोट नहीं देखा उसके हाथ के लिए दस लाख रुपए मंदिर की ओर से दिए जाते हैं. कहानी राजनीतिज्ञों और धनवानों की अराजकता के साथ धर्मांध पुजारियों की अमानवीयता को स्पष्ट करती है, जिनके लिए ग़रीबों के जीवन का कोई मूल्य नहीं. कहानी का उद्धृत अंश देश मे ंग़रीबों की दयनीय स्थिति को गंभीरता के साथ उद्घाटित करता है.

'उधर पता नहीं कैसे दस-बारह नंग-धड़ंग बच्चे सबकी नज़रें बचाकर आइस्क्रीम के स्टाल के पास पहुंच गये थे और पास पड़े कचड़े के डिब्बे में से कागज़ के जूठे कप निकालकर बची-खुची आइस्क्रीम खाने की कोशिश कर रहे थे.'

मुंबई का नाम आते ही आम पाठक के जेहन में दो दृश्य सबसे पहले उभरते हैं. एक बालीवुड और दूसरा माफ़िया. 'दहशतज़दा' कहानी ऐसे ही माफ़िया गिरोह के बीच फंसे एक टैक्सी ड्राइवर की मानसिक स्थिति को अभिव्यक्त करती है. भाई के लिए काम करनेवाले गुंडे रामसिंह नामक टैक्सी ड्राइवर को हायर करते हैं. वे एक व्यक्ति की हत्या करके उसकी लाश टैक्सी में डाल एक नाले में फेंक देते हैं, फिर एक ढाबे में डिनर करते हैं. डिनर करते हुए वे रामसिंह को अपनी दास्तान सुनाते हुए कहते हैं, 'हम सब अच्छे घरों से हैं. सभी पढ़े-लिखे. लेकिन अब बहुत दूर निकल आये हैं. यहां से लौटना संभव नहीं है.' बेरोज़गारी, भुखमरी उन्हें उस ओर ले आयी. 'भाई ने हमें रहने की जगह दी. पेट भरने के लिए खाना दिया. पैसे दिए. हमें जो कुछ भी कहा जाता है वह हम बिना सोचे-समझे करते हैं. भाई के नाम का जितना आतंक फैलता है उतना ज़्यादा पैसा हमें हफ़्ते में मिलता है.' उनके माध्यम से लेखक का उल्लेखनीय कथन दृष्टव्य है — 'नेता, पुलिस और गुंडे एक-दूसरे पर आश्रित हैं. यह एक अभेद्य महा-त्रिकोण है. इस पूरे माफ़िया-तंत्र में हमारा स्थान मात्र एक पुर्जे की तरह है.'

अरविंदजी का अनुभव संसार व्यापक है, दृष्टि सूक्ष्म. वह विषय के तह तक जाते हैं और समय और समाज की विद्रूपताओं और विडंबनाओं पर अपनी गहन अनुभूतियों को सहज और सरल लेकिन आकर्षक भाषा में उद्घाटित करते हैं. 'आदमी मरा नहीं' एक शानदार कहानी है. पात्र की जीवन स्थितियों को जिस प्रकार लेखक ने रेखांकित किया है वह अद्भुत है. कहानी का हर वाक्य उल्लेखनीय है. इस कहानी का मुख्यपात्र एक भिखारी है, जिसके माध्यम से लेखक ने सामाजिक और आर्थिक स्थितियों को व्याख्यायित किया है. 'आख़िर क्यों किसी का ध्यान उस मुफ़लिस आदमी की ओर नहीं जाता?' लेखक समाज के समक्ष एक बड़ा प्रश्न खड़ा करते हैं. कहानी का हर अंश उद्धृत किए जाने की मांग करता है. भिखारी के बैठने के स्थान से लेकर उसके शरीर तक का जो वर्णन लेखक ने किया है वह अविस्मरणीय है. यदि इसे अत्युक्ति न माना जाए तो यह इस संग्रह की श्रेष्ठतम कहानी है और भिखारी की स्थिति का वर्णन इस देश की व्यवस्था पर एक तमाचा.

'हिंदुस्तान/पाकिस्तान' अरविंदजी की एक और बहु-चर्चित कहानी है. उन्नीस सौ इकहत्तर युद्ध में बंदी पाकिस्तानी सैनिक कैप्टेन सिद्दिकी के माध्यम से दोनों देशों की स्थितियों के साथ युवा कैप्टेन सिद्दीकी और उसकी सौतेली मां सलमा के बीच पनपे प्रेम को भी चित्रित करती है. कैप्टेन का जन्म अविभाजित भारत में उत्तर प्रदेश के कस्बेनुमा किसी शहर में हुआ था, लेकिन उसके पिता पाकिस्तान चले गए थे. लेकिन

कैप्टेन सिद्दीकी भारत के उस शहर को कभी नहीं भूला और उसकी हार्दिक इच्छा रही कि वह जीवन में एक बार हिंदुस्तान अवश्य जाएगा और घायल होकर बंदी कैप्टेन सिद्दी की उसी शहर में लाया गया. अस्पताल जाते समय वह उस शहर को पहचान लेता है. उसके बचपन का जो दृश्य अरविंदजी ने प्रस्तुत किया है वह हर पाठक को उसके बचपन में खींच ले जाने में सक्षम है.

'गर्मी की छुट्टियों में, जब जबर्दस्त लू चला करती, चारों निकल जाते और परेड पर घूमा करते. इमलियां बीनते, घने पेड़ों के नीचे बने चबूतरों पर फौजियों के लिए रखे पानी के बड़े-बड़े मटकों को ढुलका आते.'

कैप्टेन सिद्दीकी की मां की मृत्यु उसके पाकिस्तान जाने के बाद ही हो गयी थी. वह कमीशन लेकर फौज में चला गया, लेकिन छुट्टियों में जब वह आया तब देखकर हत्प्रभ रह गया. उसके पिता ने अपने से लगभग आधी उम्र की युवती से विवाह कर लिया था. अंततः सलमा और उसमें प्रेम पनपता है और प्रेम बहुत आगे बढ़ जाता है. संग्रह की अन्य कहानियां 'चांद शास्त्री', 'बीर बहूटी', 'प्रतीक्षाग्रस्त', 'सुरंग', 'समुद्र' और 'इत्यादि' कहानियां इस संग्रह को विशिष्ट बनाती हैं. अरविंदजी के पास सुगठित,सरल-सहज, और संप्रेषणीय भाषा और आकर्षक शिल्प है. वह कम लिखते हैं, लेकिन जो लिखते हैं वह पाठक के मन-मस्तिष्क में छा जानेवाला होता है. निश्चित ही उनके इस संग्रह का स्वागत होगा, यह मेरा विश्वास है.

फ़्लैट नं. ७०५, टॉवर - ८,
विपुल गार्डेन्स,
धारूहेड़ा- १२३१०६ (हरियाणा)
मो.: ८०५९९४८२३३

लघुकथा

और चाभी

सुनीता मिश्रा

'मां, आज दादी ने जो कहानी सुनाई, वो मुझे अच्छी नहीं लगी.' रजाई में घुसते हुए मां से चिपक कर बच्चे ने कहा.

'तुम्हें तो दादी की कहानियां बहुत अच्छी लगती हैं, फिर आज ऐसी कौन-सी कहानी थी, जो तुम्हें पसंद नहीं आयी, हमें तो सुनाओ'.

'एक राजकुमारी थी, उसे उसके पिता ने एक तोता लाकर दिया.'बच्चे ने सुनाना शुरू किया.

'अच्छा! फिर ?'

'राजकुमारी तोते के साथ खेलती, हंसती, बातें करती, गाती, गुनगुनाती. उसे ख़ूब प्यार करती. तोते में उसकी जान बसती थी. 'बच्चे ने दादी के शब्दों को दुहरा दिया.

'मां, तोते में राजकुमारी की जान कैसे बसती होगी. ऐसा होता है क्या?'

'अरे बेटा जान बसने का मतलब, वो तोते को इतना प्यार करती थी कि उसके बिना रह नहीं सकती थी. अच्छा फिर आगे?'

'फिर, राजकुमारी बड़ी हुई. उसकी शादी एक राजकुमार से हो गयी. वो अपने साथ तोते को भी ससुराल लेकर आ गयी थी. राजकुमारी की ये बात राजकुमार को अच्छी नहीं लगती थी.'

'कौन-सी बात?'

'यही कि राजकुमारी तोते को बहुत प्यार करती थी, धीरे-धीरे, को तोते से नफ़रत होने लगी. तो वो तोते को परेशान करने लगा. कभी उसकी टांग पकड़ कर खींचता, कभी गरदन मरोड़ने की कोशिश करता. तोता बहुत तड़पता, चिल्लाता. राजकुमार ख़ुश होता.'

'अरे... बुरी बात.'

'हां...न. राजकुमारी से तोते का तड़पना देखा न जाता. एक दिन उसने तोते के पिंजरे का दरवाज़ा खोल दिया. बिचारी-राजकुमारी.'

बच्चा मां के आगोश में चिपक गया.

मां ने कमरे में रखी किताबों की अलमारी की तरफ़ देखा. कुछ अधजली, कुछ दीमक से चटी, कुछ फटे पन्नों में औंधी पड़ीं, ताले में बंद.

'और चाभी-----'

भोपाल (म. प्र.),
sunitamishra177@gmail.com

लघुकथा

सवा रुपए

वीरेंद्र बहादुर सिंह

'साहब, आपने मेरा काम किया है, इसलिए मैं आपको कुछ देना चाहता हूं. आप बताइए तो सही.' हाथ जोड़ कर उस आदमी ने कहा.

पिछले तीन दिनों से वह श्रीकांत शुक्ला के पीछे पड़ा था. शुक्लाजी ने उसका ज़मीन संबंधी एक काम कर दिया था. उसकी यह बात श्रीकांत को अच्छी नहीं लगी. लोग ईमानदार भी नहीं रहने देते. न मांगो तब भी रिश्वत देने की बात करते हैं.

शुक्लाजी कुछ नहीं बोले तो उस आदमी ने कहा, 'साहब आप कौन जाति हैं?'

'क्यों? मैं तो ब्राह्मण हूं.' शुक्लाजी ने कहा.

'फिर तो साहब मुझे आपको कुछ न कुछ देना ही चाहिए. आप ब्राह्मण हैं और मैं क्षत्रिय. क्षत्रिय तो ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देता ही है. दान-दक्षिणा देने से पुण्य होता है.'

उस आदमी की बात से शुक्लाजी को गांव के प्राइमरी स्कूल में पढ़ते समय की एक घटना याद आ गयी. एक दिन ऊधम सिंह ने उनकी पेंसिल छीन ली थी. ऊधम सिंह से स्कूल के सभी बच्चे डरते थे. इसलिए वह किसी की भी कोई चीज़ छीन लेता था. डर के मारे बच्चे अध्यापक से शिकायत भी नहीं करते थे. श्रीकांत के घर वाले काफ़ी ग़रीब थे. घर से जल्दी पैसा नहीं मिल सकता था, इसलिए वह रोते हुए ऊधम सिंह के घर जा पहुंचा.

उसने ऊधम सिंह की मां से उसकी शिकायत कर दी. उन्होंने उसे पहचान लिया था कि यह तो गांव के ही पूजापाठ कराने वाले रामधन शुक्ला का बेटा है.

ऊधम सिंह की मां ने उसे बुला कर कहा, 'तुझे शरम नहीं आयी ब्राह्मण के लड़के का सामान छीनने में. एक तुम्हारा बाप है, ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दे कर पुण्य कमाता रहता है और एक तू है ब्राह्मणों को ही लूट रहा है...'

बस, उसी दिन के बाद जब देखो, तब ऊधम सिंह श्रीकांत के लिए हर सोमवार, पूर्णिमा और अमावस को खाने-पीने की चीज़ों के साथ सवा रुपए दक्षिणा भी लाने लगा. उस समय शुक्लाजी की घर की परिस्थिति अच्छी नहीं थी, इसलिए यह सब उन्हें अच्छा लगता था. दक्षिणा में मिलने वाले सवा रुपए उनके काम आते थे.

'साहब.' उस आदमी के संबोधन से शुक्लाजी विचारों से बाहर आए. उस आदमी में उन्हें ऊधम सिंह दिखाई देने लगा. उन्होंने फ़ाइलों के ढेर से उसकी फ़ाइल निकाली तो उस पर ऊधम सिंह वल्द रामबीर सिंह चौहान लिखा था.

'शुक्लाजी आज एकादशी है. अगर मैं आपको दक्षिणा दिए बग़ैर चला गया तो मैं आप का गुनाहगार हो जाऊंगा.' कह कर उस आदमी ने कुर्ते के नीचे पहनी बंडी से रुपए से भरी थैली निकाली, जिसमें सौ और पांच सौ के नोट भरे थे, 'साहब, आप ब्राह्मण और मैं क्षत्रिय, आपने मेरा काम किया है, इसलिए मेरा धर्म बनता है आपको दक्षिणा देना.'

'आप बिना दक्षिणा दिए नहीं मानेंगे तो सवा रुपए दे दीजिए.' शुक्लाजी ने उस आदमी के आगे हाथ फैलाते हुए कहा.

जेड-४३६ ए, सेक्टर-१२,
नोएडा-२०१३०१ (उ. प्र.)
मो-८३६८६८१३३६

प्राप्ति-स्वीकार

एक टुकड़ा ज़िंदगी *(उपन्यास)* : **रूपसिंह चंदेल,** *नीलकंठ प्रकाशन, ४७६०-६१, २३, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-२. मू. ५०० रु.*

दृश्य से अदृश्य का सफर *(उ.)* : **सुधा ओम ढींगरा,** *शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. १५० रु.*

अस्थान *(उ.)* : **राजनारायण वोहरे,** *सेतु प्रकाशन, ३०५, प्रियदर्शिनी अपार्टमेंट, पटपड़गंज, दिल्ली-११००९२.*

कुलक्षिणी *(उ.)* : **हरिशचंद्र दास,** *आर. के. पब्लिकेशन, ओवरी पाड़ा, दहिसर (पू.),मुंबई-४००६८. मू. २९५ रु.*

हाशिये का हक *(साझा उपन्यास)* : *शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. २५० रु.*

रूपसिंह चंदेल की लोकप्रिय कहानियां : *प्रभात पेपरबैक्स, ४/१९, आसफ अली रोड, नयी दिल्ली-४००००२. मू. २५० रु.*

अरविंद की चुनिंदा कहानियां : *इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि., सी-१२२, सेक्टर १९, नोएडा-२०१३०१. मू. २०० रु.*

मेरी चयनित कहानियां : **मंजुश्री,** *श्रीसाहित्य प्रकाशन, डी-५८०, गली नं. ४, अशोक नगर, शाहदरा, दिल्ली-११००९३. मू. ४०० रु.*

चौदहवीं का चांद *(कहानी संग्रह)* : **निरुपम,** *परिदे पब्लिकेशन, ७९ए, दिलशाद गार्डन, नयी दिल्ली-११००९५. मू. २०० रु.*

एक रात *(क. सं.)* : **अमरेंद्र मिश्र,** *लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, ४६३७/२०, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-४००००२. मू. २९५ रु.*

टका सेर आज़ादी *(क. सं.)* : **योगेंद्र शर्मा,** *भारतीय ज्ञानपीठ, १८ इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-११०००३. मू. २०० रु.*

अनवॉक्स ज़िंदगी *(क. सं.)* : **डॉ. नीरजा श्रीवास्तव,** *अयन प्रकाशन, १/२० महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. ३०० रु.*

वंदना मुकेश, संकलित कहानियां : *राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नेहरू भवन, वसंत कुंज, नयी दिल्ली-११००७०. मू. १२५ रु.*

कोमा एवं अन्य कहानियां : **जवाहर चौधरी,** *बोधि प्रकाशन, सी-४६, सुदर्शनपुरा इंड. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. १५० रु.*

कत्ल की रात *(क. सं.)* : **रमेश वतरा,** *प्रलेक प्रकाशन प्रा. लि., विरार, मुंबई-४०१३०३. मू. ४०० रु.*

तय है फूलों का खिलना *(क. सं.)* : **देवेंद्र कुमार मिश्रा,** *अनुराधा प्रकाशन, ११९३, पंखा रोड, जनकपुरी, नयी दिल्ली-४६. मू. ३०० रु.*

लोक डाउन *(क. सं.)* : **भोलानाथ कुशवाहा,** *हिंदी-श्री पब्लिकेशन्स, कांति निवास, मलेपुर, महुआपुर-२२१४०४. (उ. प्र.) मू. २०० रु.*

टूंप कार्ड *(क. सं.)* : **राजवंत राज**, *सृजनलोक प्रकाशन, बी-१, दुग्गल कॉलोनी, खानपुर, नयी दिल्ली-११००६२. मू. १५० रु.*

खंडित होती शाश्वत अवधारणाएं *(क. सं.)* : **सदाशिव कौतुक,** *साहित्य संगम, इंदौर-४५२००९. मू. २०० रु.*

सफ़ेद तितली *(क. सं.)* : *डॉ. रमाकांत शर्मा, अद्विक पब्लिकेशन, ४१ हसनपुर, पटपड़गंज, दिल्ली -११००९२. मू. २०० रु.*

इस सुवह की रात नहीं *(क. सं.)* : **अरुण कुमार सिन्हा,** *आदर्श प्रकाशन, एच-१६/३२५, संगम विहार, नयी दिल्ली-८०. मू. १९५ रु.*

कुम्हलाई कलियां *(क. सं.)* : **सं. सीमा शर्मा,** *शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. २०० रु.*

नीली धूप में *(क. सं.)* : **राम किशोर कुशवाहा**, *शब्दांकुर प्रकाशन, मदनगीर, नयी दिल्ली-११००६२. मू. २५०.*

ईशा *(नाटक)* : **भोलानाथ कुशवाहा,** *उदीप्त प्रकाशन, १०३, कीरत नगर, लखीमपुर खेरी-२६२७०१. (उ. प्र.). मू. २९९ रु.*

ओ मारिया पिताशे *(यात्रा संस्मरण)* : **प्रतिभा अधिकारी,** : *शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. १५० रु.*

सरहदों के पार दरख्तों के साये में *(कविता)* : **रेखा भाटिया,** *शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. २५०रु.*

मेरे शब्द तुम्हारे *(क. सं.)* : **देवेंद्र कुमार मिश्रा,** *अनुराधा प्रकाशन, ११९३, पंखा रोड, जनकपुरी, नयी दिल्ली-४६. मू. ३५० रु.*

जन-मन *(दोहा सं.)* : **भोलानाथ कुशवाहा**, *हिंदी-श्री पब्लिकेशन्स, कांति निवास, मलेपुर, महुआपुर-२२१४०४. (उ. प्र.) मू. ३०० रु.*

"कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०२१"

*"**कथाबिंब**" के प्रकाशन का यह ४३वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २०२१ "कथाबिंब" के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई ! विजेता यदि चाहें तो इस राशि में से या तो वे स्वयं "**कथाबिंब**" की आजीवन या त्रैवार्षिक सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं अथवा अपने किसी मित्र/परिचित को सदस्यता भेंट कर सकते हैं. कृपया इस संदर्भ में शीघ्र सूचित करें. हम अत्यंत आभारी होंगे.*

: सर्वश्रेष्ठ कहानी (१५०० रु.) :

● **पिंजरे** - हरिप्रकाश राठी

: श्रेष्ठ कहानी (१००० रु.) :

● **मीरा की बिखरी यादें** - सीमा जैन "भारत" ● **मैच फिक्सिंग** - प्रो. दिवा भट्ट

: उत्तम कहानी (७५० रु.) :

● **पासे अपने हाथ में, दांव न अपने हाथ** - शिवानी शर्मा

● **अंतरिक्ष से** - डॉ. रमाकांत शर्मा ● **पन्ना की अंगूठी** - शुभदा मिश्र

● **गुड बॉय, मैं ख़ुश हूं !** - डॉ. मनोज मोक्षेंद्र ●**काली लड़की** - काव्या कटारे

फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत "कथाबिंब" त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरण :

१. प्रकाशन का स्थान	*:*	*पिकॉक प्रिंट्स, सी/१४३, घाटकोपर इंड. एस्टेट, ऑफ एल. बी. एस. मार्ग, अमृत नगर, घाटकोपर, मुंबई-४०००८६.*
२. प्रकाशन की आवर्तिता	*:*	*त्रैमासिक*
३. मुद्रक का नाम	*:*	*मंजुश्री (मंजु सक्सेना)*
४. राष्ट्रीयता	*:*	*भारतीय*
५. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता	*:*	*उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई - ४०० ०८८.*
६. कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता	*:*	*स्वत्वाधिकारी - मंजुश्री (मंजु सक्सेना)*

*मैं, **मंजुश्री** घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.*

*(हस्ताक्षर - **मंजुश्री**)*

T.A. Corporation

Mulchand Zaverchand Coop. Soc., Shop No. 3, Gr. Floor,
Sion-Trombay Road, Chembur, Mumbai-400071.
Mob : 9869074305

Offers

- H.P.L.C. GRADE CHEMICALS
- SCINTILLATION GRADE CHEMICALS
- GR GRADE CHEMICALS
- BIOCHEMICALS
- STANDARD SOLUTIONS
- HIGH PURITY CHEMICALS
- ELECTRONIC GRADE CHEMICALS
- LR GRADE CHEMICALS
- INDICATORS
- LABORATORY INSTRUMENTS

Manufactured by :

PRABHAT CHEMICALS

C1B, 1909, G.I.D.C., Panoli, Dist. Bharuch, Gujarat,
Ph.: 02646-272332
email : response@prabhatchemicals.com
website : www.prabhatchemicals.com

Stockist of :

- Sigma, aldrich, Fluka, Alfa, (U.S.A.)
- Riedel (Switzerland)
- Merch (GDR)
- Lancaster (UK)
- Stream (UK)

आर.ए.आई. पंजीकरण संख्या : ३५७६४/७९

पत्रिका का पता : ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८

anuvi
Innovate the next

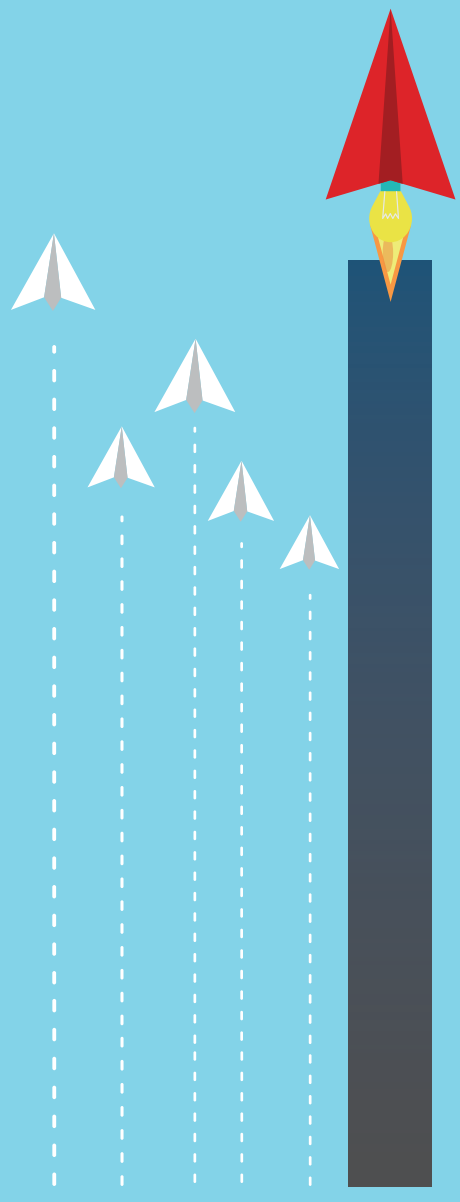

CHOOSE SMART.
STAY AHEAD.

GIVE YOUR PAINTS A SMART QUOTIENT WITH EMULSIONS FROM ANUCRYL.

Paint is not just for aesthetics. Now, with Anucryl emulsions, you can make your paint smart with the ability to make it dust resistant, stain-resistant, eco-friendly, healthy and so much more!

Our range of Emulsions include:
• Stain Resistant • Dust Resistant • Elastomeric
• Nature Friendly • Nano-Emulsion • Multicolor Paint

Give a missed call on 99991 01669

www.anuvi.in sales@anuvi.in

ANUCRYL®

Make Your Paint Smart

•Pure Acrylic •Styrene Acrylic •VAM Acrylic •Specialty Emulsions
• Acrylic Thickeners •Wetting and Dispersing Agents

मंजुश्री द्वारा संपादित व पिकॉक प्रिंट्स, सी/143, घाटकोपर इंड. एस्टेट, अमृत नगर, घाटकोपर, मुंबई-400086 में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, 12वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई-400 071.